

# आओ नौजावात चलें

स्फूर्तनामा



कृष्णा कुमारी

# आओ नैनीताल चलें

---

कृष्णा कुमारी

# आओ नैनीताल चलें

( सफ़रनामा )

कृष्णा कुमारी





## बोधि प्रकाशन

सी-46, सुदर्शनपुरा इंडस्ट्रियल एरिया एक्सटेंशन

नाला रोड, 22 गोदाम, जयपुर-302006

फोन : 0141-2213700, 9829018087

ई-मेल : [bodhiprakashan@gmail.com](mailto:bodhiprakashan@gmail.com)

कॉपीराइट : कृष्णा कुमारी

प्रथम संस्करण : जनवरी, 2019

ISBN : 978-93-89177-01-5

कम्प्यूटर ग्राफिक्स : बनवारी कुमावत 'राज'

आवरण संयोजन : बोधि टीम

नैनीताल  
अल्मोड़ा  
कौसानी  
रानीखेत को...

## कृति-सन्दर्भ

गद्य साहित्य की विविध विधाओं में 'यात्रा-वृत्त' का अपना ही महत्व है। 'अज्ञेय' जी की काव्यात्मक गद्य भाषा में जब उन के यात्रा-वर्णन प्रकाशित हो रहे थे, तब इस विधा-विशेष ने ध्यान आकर्षित किया था। रंगेय राघव ने बंगाल के अकाल पर गद्य-विधा में यात्रा-वृत्त, डायरी तथा रिपोर्ताज को मिला कर एक नया रूप प्रस्तुत किया था।

प्रकृति के प्रति जिन सहृदय साहित्यकारों में सहज आकर्षण है, उन्हें यात्रा की सुखानुभूति, रचना-कर्म की ओर प्रेरित कर रही है। कृष्णा कुमारी के अप्रकाशित सिंगापुर की यात्रा के वर्णनानुभव देखने का अवसर मिला है। लेखिका ने जिस प्रकार सूक्ष्म दृष्टि से बारीक ब्यौरों में वहाँ के वस्तु-जगत से सम्पर्कित अनुभूतियों का जो चित्रण किया है, वह अविस्मरणीय है। मैं अपने जीवन में, देश-विदेश में बहुत घूमा हूँ, पर न जाने क्यों ब्यौरे और उन के चित्र पर बनी स्मृतियाँ, समय के साथ धूमिल होती चली गई हैं। यह विधा, शुद्ध अतिरेक की माँग करती है, वह क्षमता कृष्णा जी के पास है। उन का मन सहज जिज्ञासा, कौतुहल के साथ वस्तु-जगत से सम्पर्क करता है। यह इन्द्रिय जन्य ज्ञान, अक्सर बुद्धि के दाँव-पेच छोड़ता हुआ, उन के अनुभव-जगत में उन्हें ले जाता है। यह उन का सहज स्वभाव है, यहाँ कृत्रिम, बनावटीपन नहीं है। प्रकृति उन के ही सम्मुख अपना हृदय खोल पाती है, जहाँ अनुभव की यात्रा में बुद्धि जन्य प्रत्यय बाधक न हो, एक दर्पण की तरह मनोग्राही दर्शन, चित्रित होता चला जाता है।

'आओ नैनीताल चलें' की भाषा प्रवाही तथा प्रभावी है। कोटा से गाजियाबाद तथा वहाँ से काठगोदाम, नैनीताल अल्मोड़ा, कौसानी, मल्लीताल, तल्लीताल, हिमालय, फ़िल्म की शूटिंग...छाटे-छोटे ब्यौरे और उन के साथ जुड़ी आत्मीयता विरल है। यात्रा वृत्त एक मूवी कैमरे की आँख से सम्पूर्ण परिदृश्य को दिखाता चला जाता है।

भाषा की यही चित्रात्मकता, सघन बिम्बात्मकता...कविता के साथ, गति लेती है, लगता है पास बहती हुई नदी कल-कल धारा के साथ आप भी चल रहे हों। यह बात दूसरी है कि आज की

दुनिया में भ्रमण तो होता है, पर उस का अनुभव-जगत बाहर ही रह जाता है। बुद्धिगत अभिगम, भीतर तक उस अनुभव को प्रवाहित नहीं होने देता। लेखिका का यह कथन स्तुत्य है कि 'भ्रमण-अनुभव भी ज्ञानात्मक समवेदनाओं की श्री वृद्धि में महत्वपूर्ण कारक है।

लेखिका का श्रम श्लाघनीय है, उन के पास काव्यात्मक, चित्रात्मक भाषा सम्पदा है, जिस से वे सुपठित गद्य की इस उत्कृष्ट कृति के सम्बर्द्धन में सफल रही हैं।

**-डॉ. नरेन्द्र चतुर्वेदी**

1-ल-1, दादाबाड़ी कोटा-324009

## कृष्णा कुमारी 'कमसिन' : एक परिचय

**उपनाम :** कमसिन

**माता-पिता :** श्रीमती रामदुलारी एवं श्री प्रभू लाल वर्मा

**पति :** श्री कृष्ण प्रकाश

**जन्म :** 09 सितम्बर, चेचट, कोटा (राजस्थान) में।

**शिक्षा :** एम.ए., एम.एड.(मेरिट अवार्ड), साहित्य रत्न, आयुर्वेद रत्न, बी.जे.एम.सी.

सृजन विधाएं : मुख्यतः कविता, गीत, ग़ज़ल विधाओं में सृजन के साथ-साथ अनुवाद, रिपोर्ताज, स्तोलन, लघुकथा, कहानी, संस्मरण, साक्षात्कार, यात्रा-वृत्तांत, बाल-गीत इत्यादि हिन्दी, राजस्थानी, उर्दू व अंग्रेजी भाषाओं की विभिन्न विधाओं में भी निरंतर सृजन।

**अभिरुचियाँ :** संगीत, वाद्य एवं चित्रकारिता में विशेष रुचि के साथ साहित्य पठन, लेखन एवं विद्वजनों की सुसंगति।

**प्रकाशन :** 'मैं पुजारिन हूँ' (कविता संग्रह, 1995), 'प्रेम हैं केवल ढाई आखर' (निबंध, 2002), 'कितनी बार कहा है तुमसे' (कविता संग्रह, 2003), '...तो हम क्या करें' (ग़ज़ल, 2004), 'ज्योतिर्गमय' (आलेख, 2006), 'स्वप्निल कहानियाँ' (कहानी, 2006), 'आओ नैनीताल चलें' (यात्रा वृत्तांत, 2009), 'जंगल में फाग' (बाल-गीत, 2014), 'नागरिक चेतना' (निबन्ध, 2018)। विभिन्न राष्ट्रीय एवं राज्य स्तरीय पत्र-पत्रिकाओं, संकलनों आदि में रचनाएँ प्रकाशित। 'अच्छे बच्चे' (बाल-कविता), 'कतरा नदी में' (ग़ज़ल), 'दक्षिण की ओर' (यात्रा वृत्तांत), 'कुछ अपनी कुछ उनकी' (साक्षात्कार), 'अद्भुत है सिंगापुर' (यात्रा वृत्तांत) प्रकाशनाधीन। शिक्षा निदेशालय बीकानेर द्वारा पुस्तक समीक्षाएँ प्रकाशित एवं शिक्षक दिवस पर प्रकाशित पुस्तक शृंखला में रचनाएँ निरंतर प्रकाशित। कई पुस्तकों-पत्रिकाओं में आधुनिक रेखाचित्र व आवरण चित्र प्रकाशित। कई शोध-ग्रंथों, संदर्भ ग्रंथों एवं गुरु नानक देव वि.वि. की एम.फिल. में अनुशासित पुस्तकों में विस्तृत परिचय एवं रचनाएँ प्रकाशित। कई रचनाओं का अंग्रेजी, उर्दू व



गुजराती में अनुवाद प्रकाशित।

**अन्तर्राष्ट्रीय प्रकाशन :** तुलसा, ओ के 74136 यू.एस.ए. से प्रकाशित मासिक पत्रिका 'रोशनी' (उर्दू) में गज़लें, लघुकथायें आदि प्रकाशित।

**प्रसारण :** आकाशवाणी एवं दूरदर्शन से समय-समय पर रचना पाठ व वार्तायें प्रसारित और अनेक कवि सम्मेलनों, मुशायरों में भागीदारी।

**सम्मान-पुरस्कार :** पर्यावरण विभाग, राजस्थान, कोटा नामदेव सभा, कथांचल उदयपुर द्वारा 'पगली' कहानी को कथाशिल्पी राजेन्द्र सक्सेना सर्वोत्तम कहानी पुरस्कार। नारा लेखन व पत्र-वाचन में कई विभागों द्वारा पुरस्कृत। अक्षरधाम समिति कैथल द्वारा 'प्रथम राष्ट्रीय अक्षर गौरव' सम्मान। संगम कला परिषद बैतूल मध्यप्रदेश द्वारा 'काव्य कुसुम' उपाधि। दैनिक भास्कर द्वारा 'आशीर्वाद एवीवर्स एवार्ड' तथा 'मधुबाला स्मृति सम्मान'। जिला प्रशासन द्वारा 'नागरिक सम्मान'। संस्कार भारती संस्थान दौसा द्वारा श्री शिवनारायण स्मृति सम्मान। अनुराग म्यूजिकल एंड कल्चरल सोसायटी, लालसोट (राजस्थान) द्वारा 'अनुराग साहित्य सम्मान 2007'। साहित्य मण्डल श्रीनाथद्वारा की ओर से 'हिन्दी भाषा भूषण सम्मान'। चेतना साहित्य परिषद लखनऊ द्वारा 'श्रीमती गीता स्मृति सम्मान'। 'ब्रीन अर्थ' एन.जी.ओ. कुरुक्षेत्र द्वारा आयोजित 'राष्ट्र स्तरीय महिला कविता प्रतियोगिता-2017' पर्यावरण संवर्द्धन में द्वितीय स्थान।

**विशेष पुरस्कार :** एयर इण्डिया एवं राजस्थान पत्रिका द्वारा आयोजित 'रेन्क एण्ड बोल्ड' प्रतियोगिता में जिला स्तरीय एवं राज्य स्तरीय प्रथम पुरस्कार, सिंगापुर की यात्रा अर्जित। शिक्षक दिवस 2008 में 'राज्य स्तरीय शिक्षक सम्मान'। राजस्थान साहित्य अकादमी उदयपुर द्वारा 'देवराज उपाध्याय पुरस्कार'।

**विशेष :** सलाहकार संपादक 'द कन्टेम्प्रेरी हूज हू' अमेरिकी प्रकाशन। उपाध्यक्ष, राष्ट्रीय शिक्षक रचनाकार प्रगति मंच कोटा शाखा। जिलाध्यक्ष, संगम कला परिषद बैतूल। भारतीय साहित्य परिषद कोटा द्वारा 'श्रीमती कृष्णा कुमारी का साहित्य में योगदान' मोनोग्राफ (लेखक-सुरेश वर्मा) प्रकाशित। कुछ हिन्दी आलेखों का राजस्थानी में अनुवाद।

**सम्पर्क :** 'चिर-उत्सव' सी-368, मोदी हॉ स्टल लाइन, तलवंडी, कोटा-324005

मो. : +91-91668 87276

ई-मेल : [krishna.kumari.kamsin9@gmail.com](mailto:krishna.kumari.kamsin9@gmail.com)

ब्लॉग : [kavysrijan.blogspot.com](http://kavysrijan.blogspot.com)

# लो हम नैनीताल चले

“सैर कर दुनिया की ग्राफ़िल, ज़िन्दगानी फिर कहाँ  
ज़िन्दगानी ग़र रही तो नौजवानी फिर कहाँ”

प्रकृति की अप्रतिम सुन्दरता में, नैसर्गिक सौन्दर्य में जादुई आकर्षण होता है जिस के पाश में बँध कर इन्सान पर्यटक बनने को विवश हो जाता है। जो एक बार इस अद्भुत रस का आस्वादन कर लेता है, वह बार-बार इसे पीने के लिए मचल-मचल जाता है। यही कुछ हमारे साथ होने लगा है। एक बार पर्वतीय वादियों में क्या घूम आए कि थोड़े-थोड़े दिनों में वहाँ जाने के बहाने ढूँढने लगते हैं। हम ग़लत भी कहाँ हैं। इस दौड़ती-भागती ज़िंदगी में कुछ पल चैन और सुकून के बिताना भी चाहिएँ ताकि जीवन में सन्तुलन बना रहे। और फिर कुदरत का वह शान्त वातावरण, हरी-भरी वादियाँ, कलकल निनादित निर्झर, चट्टानों से फूट कर बेतहाशा भागती दौड़ती नदियाँ, गगन चूमती पर्वत मालाएँ, सागर का सौम्य स्वरूप अहा! आनंद के ऐसे स्रोत भला और कहाँ प्राप्त हो सकते हैं। अब तो स्वप्निल (बिटिया) भी बार-बार भ्रमण करने की ज़िद करने लगी है।

हमारे रचनाकार होने का भी हमें कुछ लाभ मिल रहा है। देश के कोने-कोने में कार्यक्रम होते रहते हैं, हमें भी ख़ूब आमन्त्रण मिलते हैं। ख़ूबसूरत स्थान के प्रोग्राम को हम बिल्कुल नहीं छोड़ते। सितम्बर, 2002 ई. में ग़ाज़ियाबाद से हमें ‘दलित साहित्य अकादमी’ के वार्षिक समारोह का निमन्त्रण मिला और हम लोगों ने वहाँ से नैनीताल जाने का कार्यक्रम भी बना डाला। क्योंकि घूमने के लिए सितम्बर-अक्टूबर का समय ही श्रेष्ठ होता है। पर्यटन स्थलों पर इस समय मई-जून जैसी भीड़-भाड़ नहीं रहती एवं कीमतें भी काफी कम हो जाती हैं।

इस कार्यक्रम में कोटा के दो रचनाकार भी हमारा साथ दे रहे थे। अकेले तो हम भी नहीं जाते। निश्चित समय पर हम देहरादून एक्सप्रेस से खाना हुआ। शाम का खाना हम लोगों के साथ था ही। रात को 10 बजे हम सब ने मिल कर खाना खाया, फिर कुछ हँसी-मज़ाक़ विनोद होता रहा। लगभग 12 बजे हम सब अपनी-अपनी बर्थ पर हो लिए। थोड़ी देर आँख लगती, फिर खुल जाती। लेकिन सुबह 4 बजे बड़ी ज़ोर की आवाज़ें होने लगीं। नींद खुलनी ही थी, हम ने नीचे देखा तो हमारे पास की बर्थ पर एक छोटा-सा सामान्य परिवार था, जिन का सुबह का कार्यक्रम प्रारम्भ हो चुका था। उन्हीं के दो बच्चे बहुत चुलबुले थे, बहुत बतिया रहे थे, उन की बोल-चाल में गाँव का प्रभाव स्पष्ट नज़र आ रहा था। बच्चा सातवीं कक्षा में पढ़ता था, ऐसा उसी की बातों से ज्ञात हुआ। लड़की छोटी थी, होगी कोई 7-8 वर्ष की। दोनों की मासूम बातें, जिज्ञासाएँ जहाँ मन को अच्छी लग रही थीं। वहीं नींद में खलल भी हो जाने के कारण थोड़ी-थोड़ी खटक भी रही थी। उन सरल,

निश्चल बच्चों की भी ज़ोर-ज़ोर से की जाने वाली बातें आप भी सुनेंगे तो खुश ज़रूर होंगे।

कभी लड़का कहता, देख-देख कितनी ऊँची बिल्डिंग है। बाप रे बाप! कैसे बनाते होंगे इसे। तभी एक गाड़ी पास से गुज़री और दोनों के मुँह से किलकारी फूट पड़ी। आह्लादित बच्चे आपस में गाड़ी की तेज़ गति को ले कर बतियाने लगे। बच्ची पूछने लगी- भैया! रेलगाड़ी पटरी पर कैसे भागती है। अब दिल्ली नज़दीक आने लगी। कुछ देर बाद जिज्ञासु बालक को न जाने कहाँ दूरदर्शन केन्द्र नज़र आ गया और चहकते हुए बोला, पापा...पापा देखो! यहाँ से ही अपने टी.वी. कार्यक्रम आते हैं ना। सारांशतः उन की चुहलबाज़ी से ज़ाहिर हो रहा था कि वो पहली बार गाड़ी में बैठे हैं और दिल्ली की ओर जा रहे हैं। पास ही बैठे यात्रीगण मसूरी जाने की बातें कर रहे थे। उन की बातें सुन कर वह बच्चा फिर पापा से मुख़ातिब हो कर बोला कि अपन भी मसूरी चलो। मालूम है, उस के पिताजी ने क्या जवाब दिया। नहीं मालूम? ...हम बताते हैं। वे बोले कि जब तेरी शादी हो जाए तब अपनी पत्नी के साथ जाना। अब बच्चे की सूरत देखने लायक थी। चुप व निरुत्तर हो कर खिड़की से आकाश को ताकने लगा। अब दोनों बच्चे अपनी पढ़ाई, शिक्षकों, पुस्तकों की बातों में मशगूल हो गए। बच्चों की प्यारी-प्यारी बातें अच्छी लग रहीं थीं। इन की बातों पर कुछ शैर अर्ज़ हैं-

“छोड़ो ये किरदार की बातें  
और हैं कुछ संसार की बातें  
दूध के भी तो दाँत न टूटे  
करते हैं हथियार की बातें  
कड़वी लगती हैं बच्चों को  
अब तो शिष्टाचार की बातें”

इधर बैरों की ‘चाय-चाय’ शोर मचाने लगी। लेकिन हमारा ध्यान केवल बच्चों पर ही केन्द्रित था। क्यों न हो, बच्चे तो बच्चे ही हैं। इन की मासूम व निश्चल बातें भला किस सहृदय को नहीं लुभाती। ये बचपन ही तो है जब आदमी इतना भोला रहता है। बाद में कितना खुद ग़रज़, मक्कार हो जाता है। कभी-कभी तो लगता है कि काश! आदमी हमेशा-हमेशा बच्चा ही रहता, बड़ा क्यों हो जाता है। इस पर अपनी कविता याद आ गई- ‘काश! कि हम बच्चे ही रहते’। लेकिन...तब एक मुसीबत हो जाती, दुनिया आने कैसी चलती, यानी नए बच्चे कैसे जन्म लेते। निदा फ़ाज़ली का एक शैर हो ही जाए इस बात पर-

“मेरे दिल के किसी कोने में इक मासूम-सा बच्चा  
बड़ों की देख कर दुनिया, बड़ा होने से डरता है।”

अरे, इन बच्चों की बातों ही बातों में कब दिल्ली आ गई पता ही नहीं चला। यहाँ हम लोग फ़ेश हुए, चाय-नाश्ता किया। अपने निश्चित समय पर हम ग़ाजियाबाद पहुँचे। वहाँ दो दिवसीय साहित्यिक कार्यक्रम में शिरकत की। रात्रि को मुशाइरे में कविता-पाठ भी किया। भोजन व आवास की व्यवस्था आयोजकों की थी ही। कोई परेशानी नहीं हुई। कई बड़े-बड़े साहित्यकारों से

पहचान बढ़ी। हमारी दृष्टि में ऐसे कार्यक्रमों का दूसरा उद्देश्य यही है कि कई नए एवं कई प्रतिष्ठित रचनाकारों से परिचय हो जाता है। विचारों का आदान-प्रदान होता है। हाँ, स्वप्निल यहाँ बोर ज़रूर हुई।

इस प्रकार अपने कार्यक्रमानुसार हम 24 अक्टूबर, 2002 ई. को रात्रि 8:30 बजे नैनीताल पहुँचे। लेकिन बस के सफ़र में काफ़ी परेशानी उठानी पड़ी। एक तो ख़स्ता हाल बस, ऊपर से गर्मी। बीच में ओवरटेक करने के चक्कर में दुर्घटना होते-होते भी बची। एक बस हमारी बस को ओवरटेक करने के चक्कर में हमारी बस के सामने आ कर एकदम खड़ी हो गई। वो तो भला हो ड्राइवर साहिब का जो एकदम ब्रेक लगा दिया। फिर 10-15 मिनिट तक दोनों में काफ़ी गर्मागर्म बहस हुई। हापुड़ में पापड़ का पैकेट लेने की भारी इच्छा हुई लेकिन पूरे सफ़र में उन्हें सँभालने की परेशानी के मद्दे-नज़र ख़रीद कर बस स्वाद चख लिया। हाँ, कहीं की भी कोई भी वस्तु प्रसिद्ध होती है तो घर लाने का मन तो होता ही है, मित्रों व घरवालों को खिलाने के लिए।

मुरादाबाद होते हुए हम लगभग शाम 6:30 बजे हल्दानी पहुँचे। इसी इन्तज़ार में कि नैनीताल अब आए, अब आए। लेकिन बस यहीं ख़ाली कर दी गई। जब कि हम से नैनीताल पहुँचाने की बात हुई थी। ड्राइवर साहब से शिकायत करने पर वे बोले कि यहाँ से नैनीताल की बसें मिल जाएंगी। मेरी बस में नैनीताल की कम सवारियाँ होने के कारण मैं आगे नहीं जा रहा, सामने दिल्ली निगम की बस खड़ी है। उस में बैठ जाओ और हाँ, मैं ने आप से हल्दानी तक का ही टिकिट लिया है। अब हमारे पास चारा भी क्या था। डेढ़ घण्टे बाद उसी से खाना हुआ थोड़ी देर बाद अन्धकार गहराने लगा और हम ख़ूबसूरत रास्ते के सौन्दर्य-पान से वञ्चित रह गए। हमें व स्वप्निल को काफ़ी चक्कर आने लगे। जी है कि घबराता ही जाए, जब कि ऐसा पहले कभी नहीं हुआ था। अस्तु।

यूँ समझिए, बड़ी मुश्किल से जैसे-तैसे नैनीताल पहुँचे। सर्दी से हमारा जिस्म कँपकँपाने लगा। बस से उतरते ही एजेण्टों ने हमें घेर लिया। उन से जैसे-तैसे पीछा छुड़ाया और नज़र घुमाई तो अलौकिक दृश्य सामने था। पहाड़ों से घिरी हुई झील में लहराती हुई रोशनी से लग रहा था, जैसे पहाड़ों पर बसी हुई बस्ती व रोशनी झील में उतर कर नहा रही हों। लेकिन सर्दी के मारे बुरा हाल जो हो रहा था। सो पहले गर्म कपड़ों से जिस्म को राहत पहुँचाई, फिर एक रेस्त्राँ में जा कर कुछ देर तसल्ली से बैठे, गर्मागर्म चाय पी, तब जा कर कुछ राहत मिली। कुछ थकान भी दूर हुई। वापस बाहर आ कर देखा तो कुछ एजेण्ट अभी भी हमारे इन्तज़ार में वहीं खड़े थे। अरे हाँ, इस यात्रा में शामिल हैं- स्वप्निल बिटिया, इस के पिता श्रीकृष्ण प्रकाश, ग़ज़लकार श्री पुरुषोत्तम 'यक़ीन'। वैसे तो कोटा के अन्य रचनाकारों का मानस भी था नैनीताल की यात्रा का। मगर ग़ाज़ियाबाद से ही ये लोग कोटा वापस लौट गए। हम लोग रेस्त्राँ के बाहर आए, एक एजेण्ट से कुछ बातें कीं, उस ने एक होटल में हमें कमरा दिला दिया जो पहाड़ी की आधी ऊँचाई पर था। सामान रख कर कुछ देर बालकनी में गए, जहाँ से नैनी झील का मनोरम दृश्य स्पष्ट दिखाई दे रहा था। वाह! आनन्द आ गया। नैनी झील झिलमिल-झिलमिल सितारों का आँगन लग रही थी, दुल्हन की ओढ़नी की तरह दमक रही थी। कुछ देर बाद हम कमरे में आ गए। कल कैसे घूमना है? यह अभी हमें तय करना था। सो 'यक़ीन' साहब व स्वप्निल ने तो खाने-पीने की व्यवस्था

सँभाली। हम लोग नीचे आए। झील के किनारे बस स्टेण्ड के पास एक ऑमलेट का ठेला लगा हुआ था। हम ने उस के मालिक से ट्यूरिस्ट डिपार्टमेण्ट के ऑफिस का पता पूछा तो बोले- मैं वहीं काम करता हूँ। पूछिए, क्या पूछना है। हम ने बताया कि हमें नैनीताल घूमना है, उसी प्रसंग में कुछ पूछताछ करनी है, तो महाशय जी बोले- सुबह 7-8 बजे आ जाइए, अभी सारा बाज़ार बन्द हो चुका है। ऐसे में करते भी क्या? वापस होटल आए। गर्म पानी के नाम पर एक बाल्टी ही मिल सकी। सो, सब ने हाथ-मुँह धो कर ही काम चलाया। नहाने की बड़ी इच्छा थी मगर ठण्डे पानी के आने किसी की हिम्मत नहीं पड़ी। गर्मागर्म खाना अच्छा मिल गया। थकान से चूर तो थे ही, पड़ते ही सब नींद की आगोश में चले गए। सुबह नींद खुलते ही हम तुरन्त बालकनी में आए। झील व नैनीताल का अप्रतिम सौन्दर्य देख कर दंग रह गए। रात्रि को अलग ही मंज़र था, किंतु अब स्वर्णिम और अभी बाल-रवि की प्रथम रश्मि का स्पर्श करता हुआ भव्य अद्भुत दृश्य आँखियों के समक्ष साक्षात् था। चारों ओर पहाड़ियों से घिरी झील बहुत मासूम लग रही थी। एकदम शान्त, निश्चल, निर्मल वीतराग-सी, जिस में पर्वत-मालाओं की हरीतिमा घुल रही थी, जिस से इस का जल हरा-भरा हो रहा था। पहाड़ियों पर छोटे से ले कर भव्य होटलों की होड़-सी लगी थी। घर कम होटल ही अधिक नज़र आए। वैसे भी हिल स्टेशनों पर घर कम व होटल अधिक मिलते हैं। वहाँ पर वे ही लोग रहते हैं, जिन का वहाँ रोज़गार चलता है और यह रोज़गार सैलानियों से ही चलता है। क्योंकि वहाँ स्थानीय बस्ती इतनी होती ही नहीं कि सब को रोज़गार मिल सके। इस लिए वहाँ के लोग मैदानों में रोज़ी-रोटी कमाने के लिए आते हैं और जो मैदानों के धनाढ्य व्यापारी हैं वे वहाँ होटल, टैक्सियाँ चला कर करोड़ों कमा रहे हैं।

ख़ैर छोड़िए, वह नैनीताल की सुबह अविस्मरणीय रहेगी। देखा और देखते ही रह गए थे। इतना अनुपम सौन्दर्य... मुँह से बस 'वाँव' निकला। फोटोग्राफर 'यकीन' साहब साथ थे ही। वहीं बालकनी में हम लोगों ने फोटो खिंचवाए। इधर सर्दी का तो कहना ही क्या? मैदानों में तो सर्दी भी बुरी लगती है। लेकिन यहाँ तो वह भी प्यारी लग रही थी, बेहद सुहानी, सर्द हवा पोर-पोर को छू कर गुज़रती और तन-मन में सिहरन-सी होती। अब तक सड़कों पर भी ख़ूब आवा-जाही होने लगी थी। सारा शहर स्पन्दित हो गया था। रास्ते चलने लगे थे। दूकानदारों ने सफ़ाई कर के दूकानें खोल ली थीं। सड़कों के किनारों पर फुटपाथ भी चीज़ों से सजने लगे थे। बच्चे यूनीफ़ॉर्म में स्कूल जाने लगे थे। लड़कियाँ तितली की तरह चोटियों पर रिबन बाँधे इठलाती, बतियाती, चहकती हुई स्कूलों की ओर बढ़ी चली जा रही थीं। टैक्सियों के चालक अपनी टैक्सियों को झाड़ने-पोंछने में लगे हुए थे। कुली एवं एजेण्ट लोग काम की तलाश में झील के साथ-साथ खड़े थे या इधर-उधर नज़रें दौड़ा रहे थे।

झील भी अलसाई-सी अंगड़ाई ले रही थी। लग रहा था कि अभी तक उस की रात की ख़ुमारी पूरी तरह मिटी नहीं है। पलकें कुछ-कुछ उनींदी नज़र आ रही थीं। लेकिन वो भी शनैः शनैः खुशनुमा शहर का स्वागत करने हेतु सँवरने लगी। हम दोनों कमरे के भीतर आए तब तक ये लोग फ़ेश हो कर चाय की प्रतीक्षा कर रहे थे। हमें देख कर फिर ये भी बाहर बालकनी में चले गए। हमने मंजन कर के पानी पिया एवं बालकनी में ही सब के साथ चाय का लुत्फ़ उठाया। तैयार हो कर हम लोग नीचे उसी ठेले के पास आ गए। जब घूमने व ट्यूरिस्ट ऑफिस की बात चली तो मालूम है वह क्या कहने लगा- अरे साहब छोड़िए, कहाँ ट्यूरिस्ट डिपार्टमेण्ट के चक्कर में पड़ते

हो, मेरे भाई की अपनी टैक्सी है, उसी से नैनीताल घूमिए, मज़ा आ जाएगा। जब जहाँ जितनी देर ठहरो ठहर सकते हैं, अपनी मर्ज़ी से घूम सकते हैं। फिर किराए में ज़्यादा फ़र्क़ भी कहाँ पड़ेगा। जो थोड़ा ऊपर नीचे होगा, उस का फ़ायदा आप को मिल जाएगा। हमारी गारण्टी है, शाम को घूम कर आने के बाद आप हमें दुआएँ देंगे। हम में से कोई कुछ कहता उस के पहले ही उस ने अपने भाई को इशारा कर के टैक्सी लाने को कह दिया। हमारे ओब्जेक्शन करने पर बोला- हम आप को ग़लत सलाह नहीं देगा, हम पर विश्वास रखो। आज टैक्सी से घूम कर देख लो, कल आप अपनी मर्ज़ी से देखो। हम आप से ज़्यादा नहीं लेगा, 750 रुपए दे देना, तभी टैक्सी सामने आ गई। सात सौ रुपए में मोल-भाव हुआ। क्या-क्या दिखाना है, यह भी उस ने हमें बता दिया। तभी 'यकीन' साहब ने जवाब में कहा- हम तो परदेसी हैं साहब, हम क्या जानें? आप जहाँ घुमाएँगे घूम लेंगे। आप की सच्चाई आप जानो और हमारा एक शेर पेश कर दिया-

*“तेरे हवाले है ये जाँ  
ले इस को, जी भर के सता”*

सब कहें तो टैक्सी में घूमना तो स्वप्निल व हमें भी अच्छा लग रहा था। अपनी मर्ज़ी के मालिका फिर इस का आनन्द तो अलग है ही। वैसे यह ऑमलेट के ठेले वाला कोई 30 वर्ष का नवयुवक ही था। अण्डे से बना नाश्ता बेच रहा था। काफ़ी भीड़ थी इस के ठेले पर। भाई भी एक-दो वर्ष के अन्तर पर था। दोनों पढ़े-लिखे व स्मार्ट कहे जा सकते हैं। हाँ, हमें उन से ईर्ष्या हुई कि कितने खुशनसीब हैं जो नैनीताल में रहते हैं।

इस प्रकार सब तय हो जाने पर हम लोगों ने वहीं कॉफी पी, टैक्सी से ही कमरा शिफ़्ट किया, क्योंकि उस होटल में गीज़र नहीं था और बिना इस के हमें काफ़ी परेशानी उठानी पड़ी थी। वहीं पास ही 'हिमालय' होटल में 300 रुपए में कमरा मिल गया। जहाँ से नैनी झील लम्बाई में पूरी नज़र आ रही थी। काँच की गोल-गोल दो 'डी' नुमा खिड़कियों से कमरा ख़ूबसूरत लग रहा था। अब तक 9:30 हो चुके थे।

अब हम चलते हैं नैनीताल का दीदार करने के लिए। लेकिन हम नैनीताल देखने चलें, इस के पहले कुछ बातें इस के नाम व सौन्दर्य को ले कर हो जाएँ। कुमाऊँ अञ्चल का यह प्रमुख पर्वतीय नगर है एवं ज़िला मुख्यालय भी। नैनीताल दो शब्दों से मिल कर बना है- 'नैनी' एवं 'ताल'। 'नैनी' देवी का नाम है, जिस का मन्दिर झील के किनारे बना है और तालों की तो यह अनुपम नगरी है ही। नैनीताल का ज़िक्र हमारे प्राचीन ग्रन्थों में भी मिलता है। यह प्रमुखतः तीर्थ-स्थल है, क्योंकि चौंसठ शक्ति-पीठों में से इसे एक माना जाता है। पौराणिक कथानुसार आदिदेव भगवान शंकर अपनी पत्नी सती का हवन कुण्ड में झुलसा हुआ शरीर अत्यन्त क्रोधावस्था में ले कर जा रहे थे, तब जहाँ-जहाँ रास्ते में उन के तन के अंग गिरे, वहाँ शक्ति-पीठ की स्थापना की गई। नैनीताल में माता सती की बाईं आँख गिरने का ज़िक्र मिलता है। जहाँ आँख गिरी, वहाँ आँख की आकृति की झील बन गई, इस लिए इस स्थल को नैनीताल कहते हैं। इस के नैसर्गिक सौन्दर्य एवं अप्रतिम प्राकृतिक छटा को देख कर इसे स्विटजरलैण्ड भी कह दें तो ग़लत नहीं होगा। सागर तल से 1938 मीटर की ऊँचाई पर स्थित नैनीताल का प्रमुख आकर्षण है इस का

लैण्डस्केप। देवदार, चीड़, बाँस, बुराँस की घनी हरियाली के साथ धूप-छाँव से आँख-मिचौली करता यह नगर छरवाता परगने में आता है। जिस का शुद्ध रूप है- 'षष्टिस्वात' यानी साठ साल पहले यहाँ साठ ताल हुआ करते थे। जिन में से कुछ समय के साथ विलीन हो गए कुछ छोटे-छोटे ताल बन कर रह गए। जो भी हो नैनीताल प्रकृति प्रेमी सैलानियों पर्वतारोहियों के लिए परीलोक से कम नहीं है। वैसे यह मनोरम स्थल नैनापिक आलमा, शेर का दण्डा, लारिया कान्ता, आयार पद्म या डोरोथी सिट, हाण्डी बुन्दी, केमल्स बैंक तथा देव पद्म नामक गगन चुम्बी शिखरों से घिरा हुआ है। इस की स्थापना एवं खोज भी अन्य पर्वतीय क्षेत्रों की तरह अंग्रेज़ों ने ही की थी। 1942 ई. में पी. बैरन को जाता है, इस शहर की खोज का पहला श्रेय।

## स्नो व्यू प्वाँइण्ट

हाँ, तो अब चलते हैं, नैनीताल की सैर के लिए। सब से पहले देखते हैं, 'स्नो व्यू प्वाँइण्ट'। जैसा कि नाम से ही ज़ाहिर है, यहाँ से हिमाच्छादित पर्वत-मालाओं का भव्य दृश्य दिखाई देता होगा। जी हाँ, यही किलबरी है या हिमालय दर्शन भी कह लीजिए। शुद्ध, स्वच्छ, सर्द हवाओं से, पहाड़ी रास्तों से घूमते-घामते हम यहाँ पहुँचे। पूरे रास्ते हिमालय दर्शन की प्रबल जिज्ञासा मन को उत्फुलित करती रही थी। जैसे ही हम अपनी मंजिल पर पहुँचे। सामने ग्लेशियर बाँहे फैलाए स्वागतातुर थे। एकदम अनिर्वच सौन्दर्य, पलकें ठगी-सी रह गई। सच कहें तो इस दृश्य ने ठग लिया हम को। बर्फ़ से ढकी ये पर्वत-मालाएँ थीं तो कई किलोमीटर दूर लेकिन यूँ लग रहा था कि थोड़ा हाथ बढ़ा कर इन्हें छू सकते हैं, ये सामने ही तो खड़ी हैं। वाह रे! प्रकृति, धन्य है वह असीम सत्ता, उस की लीला, क्या कुछ नहीं बनाया उस ने, कौन पार पा सका है आज तक उसकी माया का? यहीं आ कर विवश मानव 'नेति-नेति' कह उठता है। हमें अनायास ही गीत याद आ गया- 'ये कौन चित्रकार है...ये कौन चित्रकार है...'। यहाँ पर दूरबीन वाला तो होना ही था। केवल 5 रुपए में हम ने दूरबीन का प्रयोग किया। वहीं पर कुमाऊँ की परम्परागत ड्रेसें मिल रही थीं, जिन्हें पहन कर फोटो खिंचवाया जा सकता था। लेकिन हम तो इस तरह के अन्य हिल स्टेशनों पर कई स्नेप ले चुके थे। ऐसी पोशाकों के साथ फोटो का शौक न हमें है न स्वप्निल को। लेकिन यहाँ का दृश्य देखते-देखते दिल नहीं भर रहा था। नीचे घाटी में असंख्य प्रजातियों के पेड़-पौधे लदे पड़े थे। एकदम शस्यश्यामला घाटी, नयनों को परमानंद मिल रहा था। आँखें हैं कि थकती ही नहीं थी। इन नज़ारों को देखते-देखते। बस देखते ही जाओ। हाँ, जब मनाली गए थे तब ग्लेशियर तक हो कर आए थे। रोहतांग दर्रा पर ग्लेशियर को छू कर देखा था, उस का आनन्द अलग था, वो अहसास भी अवर्णनीय है। लेकिन यहाँ दूर से देखना भी अच्छा लग रहा था। यहाँ ग्लेशियर विशाल फलक तक एक साथ समक्ष खड़ा था जब कि रोहतांग में बर्फ़ से ढका कम क्षेत्र था।

वहाँ से थोड़ा नीचे उतर कर एक चोटी की तरफ़ इशारा करते हुये ड्राइवर महोदय ने, जिन का अच्छा-सा नाम पंकज तिवारी है, कहा कि वो जो सब से ऊँची चोटी आप को नज़र आ रही है वह 'चाइना पीक' है, जो 2600 मीटर ऊँची है। वहाँ से चीन की दीवार स्पष्टतः देखी जा सकती है। हम ने तुरन्त कहा- चलिए ना, तो वो हमें आश्वस्त करने के अन्दाज़ में बोले, मैडम, वहाँ जाने

के लिए दिन भर चाहिए। वहाँ पहुँचने के लिए 3 किमी. तो आप को पैदल ही यात्रा करनी पड़ेगी। मन हुआ कि चलिए लगे हाथों संसार का दूसरा आश्चर्य देख लेते, ताज तो देख ही रखा है लेकिन हमारे हमसफ़र इस के लिये तैयार नहीं थे। हम ने पंकज जी से सवाल किया कि क्या आप 'चाइना पीक' जा चुके हैं? वहाँ से चीन की दीवार कैसी लगती है? उन्होंने हामी भरते हुए सर हिलाया और बोले मैं तो कई बार जा चुका हूँ, अच्छा तो लगता ही है। कुछ देर वहीं हम लोग सड़क के किनारे खड़े हो कर देवदार के, बुर्राँस के वृक्षों को देख-देख कर कृतार्थ हुए जा रहे थे। इन पेड़ों का नाम पुस्तकों में पढ़े थे, आज सामने खड़े थे ये हमारे वाकई, हमारी पहाड़ी वनस्पतियाँ, पेड़-पौधे बड़े ही सुन्दर होते हैं। जब नाम ही देवदार है, जहाँ देव शब्द आ जाए वहाँ स्पष्ट है सौन्दर्य तो होगा ही। वैसे इस के शब्दार्थ पर जाएं तो 'देवों' वाला पेड़ कहा जा सकता है, हो सकता है इसे ही कल्प-वृक्ष कहा जाता हो, वैसे भी यह देव-भूमि में ही तो लगता है, मिलता है और पूरे हिमाचल प्रदेश ही क्या सारा हिमालय ही देव-भूमि कहलाता है। यहीं तो हमारे बड़े-बड़े ऋषियों ने तप किए हैं। कैलाश पर्वत पर तो साक्षात् शिव विराजते हैं। जो भी हो, बड़ा खूबसूरत होता है यह वृक्ष, बिल्कुल नाम के अनुरूप ही है।

हम सड़क के किनारे खड़े-खड़े यह सब सोच रहे थे, तभी पंकज जी ने हमारे खयालों की दुनिया को झकझोरते हुए कहा कि देखिए, यहाँ से नैनीताल व नैनी झील पूरी तरह नज़र आ रही है। यह झील आम के आकार में है। वाकई, यह झील ऐसी ही दिखाई दे रही थी। वहाँ से पूरे नैनीताल को कैमरे में कैद कर के हम नीचे आते हैं,

## केव गार्डन

'केव गार्डन'। जी हाँ, पहली बार यह नाम सुना था। गुफाओं का भी कोई बाग़ हो सकता है, वाह भई! यहाँ पर कुछ टिकिट भी लगा था। गार्डन के भीतर कुल छः गुफाएँ थीं जिन में से गुज़रना था। गुफाएँ प्राकृतिक ही होंगी, जैसा कि हम ने महसूस किया। ज़ियादातर सैलानी दो-तीन गुफाओं को पार कर के ही तौबा कर रहे थे। के.पी. सर तो बाहर ही खड़े हो गए। स्वप्निल, 'यकीन' सर व हम, तीनों गुफाओं में से हो कर बाहर आ गए। वाकई, भीतर से ये काफ़ी सँकरी, अँधेरी, ऊबड़-खाबड़ थीं, बीच-बीच में खड़ी चट्टानें भी थीं। चढ़ना-उतरना, फिसलना सब करना था। बीच-बीच में कुछ जगह तो बैठ-बैठ कर, काफ़ी झुक कर बड़ी ही मुश्किल से निकलना पड़ा। 'यकीन' जी ने तो तीन के बाद हथियार डाल दिए। पर हम कहाँ मानने वाले थे। हमारी जिज्ञासा तो बच्चों से भी बलवती है, साहबा हम ने कहा जब टिकिट लिया है तो छहों गुफाओं को क्यों नहीं देखें। स्वप्निल व हम चौथी गुफा में गए, वह भी अधिक कठिन तो नहीं थी, आराम से पार कर ली। पाँचवीं में काफ़ी मुश्किल आई। छठी में तो नानी याद आ गई। अकेले जाने का साहस तो कर नहीं पा रहे थे, मगर एक अन्य पर्यटक महिला-पुरुष व बच्चे को जाते देख कर उन के पीछे हो लिए। बच्चे में बड़ा उत्साह था। सब से आगे चल रहा था। उम्र लगभग 12 वर्ष होगी। यह उम्र होती ही ऐसी है। बीच में काफ़ी अँधेरा, बेहद सँकरी एवं इतनी ऊबड़-खाबड़ कि वो लोग साथ न होते तो हम कहीं के नहीं रहते न तो वापस आ पाते, न ही आगे जा पाते, चढ़ना और उतरना काफ़ी



खतरनाक व मुश्किल था। बिना सहारे के यह सम्भव नहीं था। वो तो भला हो साथ वाले भद्र जन का जिन्होंने हम दोनों को हाथ से पकड़ कर चढ़ाया-उतारा, वरना हम तो वहीं अटक जाते। जब तक कोई निकालने नहीं आता और फिर वो भी गुफा में, कीड़े-मकोड़ों का डर भी होता ही है। बाहर आ कर उन महोदय को हम ने बहुत धन्यवाद दिया। ये काफी संजीदा व खुशमिज़ाज नवयुवक लगे हमें। उम्र कोई 25-30 के लगभग ही होगी। मुश्किल तो आई मगर यह अहसास काफी रोमांचक रहा व नया भी। स्वप्निल को भी काफी अच्छा लगा, कुछ हट कर जो था। हट कर होना तो अपने-आप में काफी आनन्ददायक एवं अद्वितीय अहसास होता ही है। जब बाहर आ कर इन दोनों को हम ने सारी स्थिति बतलाई तो बोले, फँस जाते तो हम ढूँढने आते ही सही। शेष गार्डन ठीक था। वहाँ संगीतमय फ़व्वारा भी था, लेकिन रात्रि को 7 से 9 बजे के बीच चलता था। मैसूर के वृन्दावन गार्डन के बाद दूसरी जगह यह फ़व्वारा देखने को मिला था।

हाँ, यदि आप नैनीताल जाएं तो छठी गुफा में ज़रूर जाएं मगर अकेले नहीं। अरे हाँ, हट कर चलने वाली बात पर ‘यकीन’ जी का ही शेर याद आ गया-

“इसी इक बात पर अहले-ज़माना हैं ख़फ़ा हम से  
लकीरें हम ज़माने से ज़रा हट कर बनाते हैं”

## खुर्पाताल

चलिए, यहाँ से हमारी गाड़ी मोड़ लेती है, खुर्पाताल की ओर लेकिन हम इस ताल तक पहुँचें, उस के पूर्व क्यों न एक झरने के आनन्द में नहाया जाए। तो जैसे ही हम थोड़ा आगे बढ़े एक झरना पहाड़ी चट्टानों से गिर कर लुढ़कता हुआ, सीधे रास्ते पर अपने पलक पाँवड़े बिछा रहा था। यह झरना अधिक ऊँचाई से नहीं गिर रहा था, क्योंकि यहाँ ऊँचाई कम थी केवल ढलान थी। कई धाराओं में विभक्त हो कर बहते इस झरने को ‘वाटर फॉल’ की जगह ‘वॉकिंग वाटर, रनिंग वाटर या फ़्लोइंग केनाल्स’ भी कह सकते हैं। इस के शीतल जल को पाँवों से छुआ तो ग़ज़ब का सर्द अहसास मिला, बहुत ही सुकून। कोटा की भीषण गर्मी से यहाँ हमें बहुत राहत मिल रही थी। कुछ देर हम सब लोग जल से क्रीड़ाएँ करते रहे, इठलाते रहे, मस्ती में झूमते शराबों में मशगूल होते रहे। कभी एक-दूसरे पर पानी उछालते तो कभी अंजुरी में इसे भर कर पी जाते। वहीं पास में एक रेस्त्राँ था ही। कुछ देर बाद हम लोगों ने गर्मागर्म चाय पी व ब्रेड पकौड़ों का नाश्ता किया, क्योंकि भूख से तो बेहाल हो ही रहे थे। सुबह से कुछ खाया भी कहाँ था। फिर यहाँ की विशुद्ध जलवायु के सबब भूख तो बहुत लगती है ही। शस्य-श्यामल वादियों की आगोश में बैठ कर चाय-पान...आ...हा...। इस के पश्चात एस.टी.डी. से कोटा बात भी कर ली, केवल 12 रुपए में। ये क्या, पंकज जी ने खुर्पाताल पहाड़ी के ऊपर से ही दिखा दिया, जो घाटी में था। इसे खुर्पाताल इस लिए कहते हैं कि इस की आकृति गाय के खुर की तरह है। यहाँ जाने के लिए शायद D.M. Nanital की अनुमति लेनी पड़ती है। वैसे घाटी में नज़र आता यह ताल भी 1635 मी. की ऊँचाई पर है, जो नैनीताल से मात्र 7 किमी. दूर है। इस ताल में हमें जो विशेषता नज़र आई वो ये कि इस का जल

एकदम गहरे हरे रंग का था। हाँ, सीढ़ीनुमा खेतों व पहाड़ियों से घिरे होने के कारण दूर से भी काफ़ी आकर्षक लग रहा था। यहाँ मछलियाँ बहुत होने के कारण यह जगह मछली पकड़ने के लिए भी प्रसिद्ध है।

चलते-चलते पंकज जी ने एक भूरे रंग की हरियाली विहीन पहाड़ी की ओर संकेत कर के बताया कि इसे 'केमल बेक हिल' कहते हैं, क्योंकि इस की आकृति ऊँट की तरह है। हाँ, लग तो ऐसी ही रही थी। चारों ओर हरी-भरी पहाड़ियों के बीच यही पहाड़ी भूरे रंग की थी। पंकज जी ने बताया कि इस पहाड़ी पर आज तक कोई पेड़ या वनस्पति नहीं उगी है। कारण जो भी हो, कुदरत का करिश्मा मान लीजिए या कोई भौगोलिक कारण। वैसे हम मान लें कि यह पहाड़ी पत्थर की चट्टानों की हो सकती है, तब भी ओने-कोने में कहीं न कहीं कुछ घास-फूस तो उग ही जाता है। बाद में के.पी. जी कह रहे थे कि ये टूरिज़्म वाले भी ग़ज़ब का सोचते हैं। सैलानियों को लुभाने के लिये प्वाइण्ट बढ़ाने के लिए कहीं भी कोई प्वाइण्ट गढ़ लेना इन के बाएं हाथ का खेल है। ख़ैर, यह तो हम ने भी नोट किया है कि ये पर्यटकों को अपनी सूची में बताएंगे कि दिन भर में हम आप को 20 अमुक-अमुक जगह ले जाएंगे, उन में से देखने योग्य निकलेंगी मात्र 8 जगह। शेष तो यूँ ही चलते-चलते कुछ भी प्वाइण्ट्स के नाम बना लेते हैं, जैसे- 'केमल बेक'। हम ने जब ग़ौर किया तो पाया कि कई पहाड़ियों की ऊपर से आकृति किसी पशु की तरह होती है। ख़ैर ये लोग भी क्या करें। दिन भर घुमाना है तो कुछ न कुछ तो दिखाएंगे ही। इन के लिए भी पापी पेट का सवाल जो होता है और फिर इन की अच्छी कमाई भी तो साल में 7-8 महीने ही होती है। शेष समय यूँ ही हाथ पर हाथ धर कर बैठे रहना पड़ता है। मजबूरी है, इसी लिए कितने ही पहाड़ी युवक रोज़गार की तलाश में मैदानों में भटकते रहते हैं। भूख होती ही ऐसी है, जो क्या-क्या पाप नहीं करवाती। भूख पर एक सूक्ति भी बहुत बार पढ़ चुके हैं-

*“बुभुक्षितः किम न करोति पापम्”*

मेरा अपना शेर भी प्लीज़ सुन लीजिए-

*“मुराद इतनी है अब तो बस दुआ-ए-ख़ैर में 'कमसिन'  
जहाँ भर में किसी का भूख से हरगिज़ न दम निकले”*

## सात ताल

यूँ तो तपस्वीह करते-करते अब बारी आई जनाब सातताल की। कहा ना नैनीताल तो है ही तालों की नगरी। 'सातताल' जैसा कि नाम से ही ज़ाहिर हो रहा है कि यह सात तालों का समूह होना चाहिए। देखिए ना हमारा विचार एकदम सही निकला। यही बात पंकज जी कहने लगे कि यहाँ सात तालों की शृंखला है। लेकिन अब केवल दो ही ताल बचे हैं, जिन में नल-दमयन्ती भी शामिल हैं। वैसे एक राज़ की बात यह है कि अभी भी नावों वाले 'सातताल' में पर्यटकों को नौका-

विहार के समय यही कहते हैं कि यह रामताल है, थोड़ी नाव आगे ले जा कर कहेंगे अब लक्ष्मण ताल आ गया, फिर सीताताल कहेंगे, यानी एक ही ताल में सात ताल आप को घुमा देंगे और पर्यटक खुश कि एक ही ताल में सात मिले हुए हैं, जब कि हकीकत कुछ और ही है, जो कि मैं ने अभी आप को बताई, लेकिन रोज़ी-रोटी के चक्कर में यह सब चलता है। हाँ, ये सात ताल राम, लक्ष्मण, भरत, शत्रुघ्न, सीता, नल, दमयन्ती नामों से ही जाने जाते थे, जो पहले अलग-अलग थे। अब विलीन हो गए, सूख गए। पंकज जी ने सारा खुलासा कर दिया। एक बहुत ही रुचिकर बात तो बताना ही भूल रहे हैं कि इस समय नैनीताल में 'बाज़' फ़िल्म की शूटिंग चल रही थी और आज यह शूटिंग 'सातताल' में ही हो रही है। इसी लिए 'सातताल' पहुँचने के पूर्व रास्ते में एक रेस्टोरेंट पर पंकज तिवारी जी कार रोक कर हमें भोजन करने को कहते हैं। इस लिये कि 'सातताल' में शूटिंग होने के कारण वहाँ रेस्टोरेंट में काफी भीड़ होगी। आप को खाना भी ठीक से नहीं मिल पाएगा। हम कार में से उतर कर रेस्त्राँ में गए लेकिन यह क्या, ये तो पहले ही हाउसफुल। पूरा हॉल बंगालियों से लबालब भरा हुआ है। प्रतीक्षा में लगो या चलो। फिर दूसरी बात, यहाँ कुछ विशेष प्रकार की बू भी आ रही थी। शायद यहाँ वेज व नॉनवेज दोनों भोजन उपलब्ध थे। सफ़ाई व पवित्रता भी कम ही थी। फिर जहाँ नॉनवेज मिलता हो वहाँ खाने का तो सवाल ही कहाँ उठता है। हम तो नहीं खा सकते, क्योंकि सम्भवतः बर्तन, चाकू, भगोनियाँ, चम्मचें सब कॉमन ही होते हैं। ढालें भी उसी फ़ाईंग पेन में फ़ाई होती हैं, जिस में कुछ देर पहले नॉनवेज फ़ाई हुआ है। चम्मचें भी मिल ही जाती होंगी। इस व्यस्ततम समय में किसे इतनी फ़ुर्सत है कि आप का इतना ध्यान रखे। शायद आप को हमारे विचार ग़लत लग रहे हों। हो भी सकते हैं, अपवाद मिल भी जाते हैं, लेकिन अमूमन ऐसा ही होता है।

अरे, फिर हम विषय से भटक रहे हैं। अब हम ने यहाँ खाने का आइडिया ड्रॉप कर दिया। हाँ, आप के ही काम की एक बात और है जो अभी बता ही दें। नैनीताल में सितम्बर-अक्टूबर विशेष कर बंगालियों का सीज़न होता है। इस वक़्त शायद वहाँ दीपावली-दशहरा या दुर्गा-पूजन की छुट्टियाँ होती हैं, अतः ये लोग अवकाश का लुत्फ़ उठाने इधर ही आते हैं, क्योंकि दार्जिलिंग के बाद यही हिल स्टेशन इन के निकट पड़ता है और माउण्ट आबू इस समय गुजरातियों से भरा मिलेगा, क्योंकि वहाँ से गुजरात एकदम करीब है। क्या बताएं आप को, पूरा नैनीताल बंगालियों से भरा हुआ था। हम जिधर भी जाते लगभग 98 प्रतिशत बंगाली ही नज़र आ रहे थे, हम ने सोचा महज इतिफ़ाक़ होगा, लेकिन तिवारी जी ने ही बताया कि यह तो सीज़न ही इन का कहलाता है। इन दिनों इन के कारण महँगाई भी बढ़ जाती है। हम ने सोचा, यह भी ख़ूब रही। हम तो ऑफ़ सीज़न मान कर ही यहाँ आए थे ताकि न ज़्यादा भीड़-भाड़ होगी, न ही महँगाई ख़ैर, ज्ञान तो घर से बाहर निकल कर ही मिलता है, जानकारी बढ़ती है। आप भी नैनीताल जाएँ तो यह बात याद रखिएगा। वैसे तो कोई बात नहीं लेकिन एक बात है कि घूमते समय टूरिस्ट बसों में कम्पनी नहीं मिल पाती, क्योंकि भाषा समस्या सामने खड़ी हो जाती है। हम किसी हमसफ़र से बात नहीं कर पाते, घुलमिल नहीं पाते, परस्पर परिचय-क्षेत्र नहीं बढ़ पाता। इन सब के बीच में अपना स्वयं का समूह अकेला पड़ जाता है, हर चीज़ के दाम भी ऊँचे हो जाते हैं। आप इस सीज़न में जाएँ तो सितम्बर के पहले सप्ताह में जाइए, पूरा लुत्फ़ उठा पाएँगे। इधर बारिश की विदाई होने का समय होने के कारण इस समय कण-कण हरियल रहता है, हरियाली की छटा देखते ही बनती है।

अक्टूबर में छोटी-छोटी दूब व घास सूख चुकी होती है और बंगाली मौसम अक्टूबर में ही होता है। आप सोच रहे होंगे कि मई-जून में भी महँगाई के कारण नहीं जाएं, भीड़-भाड़ भी रहती है तो कब जाएं, सितम्बर में जायें। सौ बात की एक बात तो यह कि अपनी सुविधानुसार ही जाएं। वैसे भी सब अपनी परिस्थितियों के अनुसार ही प्रोग्राम बनाते हैं। सॉरी, हमें सलाह नहीं देनी चाहिए। एक कोटेशन पढ़ा था- “संसार अपराध कर के इतना अपराध नहीं करता, जितना वह दूसरों को सलाह दे कर करता है।”

बिल्कुल बजा फ़र्माया है। भारतीय वैसे भी मुफ़्त मश्विरा देने के लिए विशेष रूप से मशहूर हैं। ज़रा ग़ौर किया जाए तो कितने अचरज की बात है, हम अपनी अमूल्य सलाह मुफ़्त में दे देते हैं। जब कि आजकल तो इस की भी भारी भरकम फ़ीस वसूली जाती है। इस के लिए कई बड़े-बड़े केन्द्र खुले हुए हैं। एक हम हैं कि मुफ़्त में सलाह बाँटते फिरते हैं। आदत से लाचार जो ठहरे।

अब हम बढ़ते हैं सातताल की तरफ़ और दूर से ही हमें दिखाया जाता है, ‘नल-दमयन्ती’ ताल। कहा जाता है कि अपने जीवन के कठिन समय में नल-दमयन्ती इसी ताल के पास रहे थे। जिन मछलियों को उन्होंने काट कर कढ़ाई में डाला था, वे भी उड़ गई थीं। वही कटी हुई मछलियाँ यहाँ अभी भी दिखाई देती हैं। वैसे यहाँ मछली का शिकार मना है। जब ताल का नाम नल-दमयन्ती है तो जरूर इन का सम्बन्ध इस स्थान से रहा ही होगा। नाम के पीछे सबब तो जरूर होता ही है। हाँ, समयानुसार बहुत कुछ बदल जाता है। घटनाएँ, कथाएँ बदल जाती हैं। कुछ छूट जाता है, कुछ नया जुड़ता जाता है, यह समय की कठोर सच्चाई है।

यहाँ से सीधे हम सातताल पहुँचें। कार से उतरे तो मुख्य द्वार के साथ ही एक और छोटे से द्वार पर दो गार्ड तैनात थे। कुछ शाही गाड़ियाँ भी पार्क थीं। हमें समझते देर नहीं लगी कि शूटिंग यहीं चल रही है। हमें ड्रॉप कर के तिवारी जी एकाध घण्टे का समय दे कर गाड़ी की मरम्मत करवाने चले गए। हम लोगों ने जिज्ञासावश संतरियों से पूछ ही लिया कि शूटिंग यहीं चल रही है क्या? वे बड़ी शालीनता से बोले कि यहीं पहाड़ी के नीचे नीबू के एक बाग़ में चल रही है। हम उधर जाने लगे तो हमें टोकते हुए बोले, मैडम, प्लीज़ आप इधर नहीं जा सकती, डायरेक्टर ने मना कर रखा है। अब क्या था। हम चारों ने ताल के अन्दर प्रवेश किया। ताल काफ़ी दूर व नीचे था। रास्ते में चार-पाँच रेस्टोरेंट मिले। हम लोग कुछ देर ठहर कर विचारने लगे कि खाना पहले खाया जाए या ताल में उतरा जाए। तभी दो-चार युवक सामने से आते हुए हमारा चेहरा पढ़ कर बोले जाइए, शूटिंग देख आइए, सामने से चले जाइए। अब क्या था। सोचा, खाना तो रोज़ ही खाते हैं, शूटिंग देखने का तो जीवन में पहली बार अवसर मिल रहा है, महज़ इतिफ़ाक़ हुआ है। इसे देखने की तमन्ना सदैव दिल में रही है। वैसे के.पी. जी व ‘यकीन’ साहब की इच्छा नहीं थी। दोनों रिज़र्व नेचर के तो हैं ही। लेकिन हम कोई मानने वाले थे। स्वप्निल और हम तेज़-तेज़ क़दमों से उधर ही बढ़ने लगे। ये लोग क्या करते, विवश हो कर हमारे पीछे-पीछे हो लिये। पहाड़ी झाड़-झखाड़ों को पार करते हुए हम मंजिल पर पहुँच तो गए। यह क्या! यहाँ तो पहले से ही भीड़ जमा है। हम भी इसी भीड़ का हिस्सा बन गए। लेकिन शूटिंग देखने में कामयाब नहीं हो पा रहे थे। तभी एक शालीन-सा लड़का बोला, सिस्टर थोड़ा उधर (इशारा करते हुए सामने वाले झाड़ों की तरफ़) जा कर देखिए, करिश्मा कपूर व दीनू मोरिया साफ़ नज़र आएंगे। चलिए साहब, उधर गए। रास्ता तो

ऊबड़-खाबड़ था। लेकिन वहाँ से कुछ नीचे समतल पर वाकई शूटिंग चल रही थी। कोई धुन बज रही थी, शायद फिल्म के गीत की हो। करिश्मा कपूर को दीनू मोरिया अपने एक हाथ से पानी पिला रहा था। दूसरे हाथ में बोतल लिए हुए, जिस से पानी डाल रहा था। क्योंकि करिश्मा के हाथ कीचड़ में सने होते हैं। आज बरसों की मुराद पूरी हो रही थी। करिश्मा लाल सुर्ख टी-शर्ट, सिर पर टोपी व जीन्स में थी। एक दम गौर वर्ण, बहुत सुन्दर व प्यारी लग रही थी। शॉट बार-बार 'कट' हो रहे थे। हम ने देखा कि वहीं नीचे उन्हीं के पास लगभग 10-20 फीट की दूरी पर ही कुछ लोग खड़े शूटिंग देख रहे थे। जैसे ही हम भी उतरने लगे। गार्ड ने इन्कार कर दिया कि आप नीचे नहीं जा सकती। हम वापस लौटे, क्योंकि सीन समाप्त हो चुका था। करिश्मा अपने कैम्प में चली गई। वहीं पर पूरी टीम के लिए भोजन बनाया जा रहा था तथा कुछ लोग खाना खा भी रहे थे। टीम के कुछ लोग भीड़ को तितर-बितर करते हुए कह रहे थे कि आप लोग हमें खाना खाने दीजिए। करिश्मा जी भी अब लचक करेगी, बाद में आना।

हमें झुँझलाहट व गुस्सा तो बहुत आ रहा था। ये लोग आखिर समझते क्या हैं अपने आप को? जिधर से भी शूटिंग देखने का प्रयास करते हैं, उधर जाने से इन्कार कर देते हैं। यदि हम लोग फिल्म नहीं देखेंगे तो ये ही भूखे मर जाएंगे। हमारे पैसों पर ही तो इन के ऐश होते हैं। बाद में मालूम पड़ा कि करिश्मा ने खाना दो घण्टे बाद खाया था। मन खराब हो गया, वापस लौट आए। वहाँ का सैट भी हटा लिया गया था। सो, हम ने अब बोटिंग करने का मानस बनाया। सब की सहमति से यही तय हुआ। हमने सौ रुपए में मल्लाह वाली नाव ली और चल पड़े सातताल की सैर को। वाकई यह ताल बहुत-बहुत मनोरम है। चारों ओर सघन वनस्पति, रंग-बिरंगे फूल, लताओं से आच्छादित यह ताल नैनीताल का सर्वाधिक विख्यात, रमणीय है। हरी-भरी वादियों से घिरा होने के कारण पानी का रंग यहाँ भी हरा ही नज़र आ रहा था। किनारे से ताल की ब्यूटी बहुत अलग लग रही थी, तो पानी के बीच में से कुछ अलग ही सौन्दर्य झलक रहा था। वाकई, जीवन का अस्त-सुख यही प्रकृति प्रदत्त सुकून है। इस के समक्ष भौतिक सन्साधन कुछ नहीं हैं। कुछ भी नहीं है झूल-झूल कर, झूम-झूम कर, बाय-बाय करती बाज़-वृक्षों की डालियाँ, पक्षियों की चहक-गुनगुनाहट, पतवार के चलने पर 'छप-छप' होती पानी की आवाज़, हम सब को मन्त्रमुग्ध किए हुए थी। थोड़ी दूर जा कर मल्लाह कहने लगे कि यहाँ रमताल है, थोड़ा बढ़ें तो सीता ताल बताया, थोड़ा आगे लक्ष्मण ताल का नाम लिया। उस ने कहा कि अब ये सारे ताल एक हो गए हैं। पहले अलग-अलग थे। हमें तिवारी जी की बात याद आ गई। मन ही मन हँसी-सी आने लगी। 100 रुपए में एवं एक घण्टे में हमें पूरे ताल की परिक्रमा करवानी थी मल्लाह जी को। बहुत दूर अन्दर तक नाव ले कर गए। हम ने वहाँ आस-पास के कुछ फ़ोटोग्राफ़्स भी लिए।

मगर हमारा ध्यान शूटिंग की ओर ही ज़ियादा था। पुराना सैट हटा लिया था। हमारा मन खिन्न होने लगा कि अब शूटिंग नहीं होगी। मल्लाह से हम बार-बार उसी किनारे की ओर ले जाने की ज़िद करते तो वह कहता- मेमसाब, शूटिंग तो दिन भर चलेगी। इधर एक घण्टे का वक़्त बीतता जा रहा था। तभी हम ने देखा कि बिल्कुल झील के किनारे एक और सैट बनने लगा है। हम आश्चर्यचकित हुए। वैसे नौकायन का आइडिया 'यकीन' जी का ही था। जब शूटिंग वाली टीम शूटिंग स्थल से हटने लगी थी। तब उन्होंने कहा था कि चलिए हम लोग नाव को शूटिंग वाले किनारे के पास ले जा कर खड़ी कर लेते हैं। वहाँ से कोई हटा नहीं सकता। वाकई 2-3 नावें वहीं

तैर रही थीं। वे लोग पहले से ही इसी प्रकार शूटिंग देख रहे थे। वैसे 'यकीन' साहब के आइडिए तो धासूँ होते ही हैं। बुद्धिमान तो बहुत हैं ही। लगे हाथों इन का थोड़ा परिचय भी हो जाए। इन का पूरा नाम पुरुषोत्तम 'यकीन' है। फोटोग्राफी का व्यवसाय तो है ही, साथ ही कोटा के श्रेष्ठतम शाइर हैं। हरफ़न मौला हैं, ऐसा कोई काम नहीं जो इन्हें नहीं आता हो। चित्रकला, संगीत, अभिनय में पारंगत कह सकते हैं। उर्दू शाइरी में भी महारत हासिल है। स्वयं के हाथ से लिखी उर्दू लिपि में इन की पुस्तक प्रकाशित है। देश के जाने-माने रचनाकार हैं। हमारे साहित्यिक उस्ताद हैं। बस, इतना ही काफ़ी है, वर्ना विषयान्तर हो जाएगा।

शनैः शनैः हमारी तरी शूटिंग स्थल की ओर बढ़ने लगी। 'यकीन' जी मस्त हो कर बाँसुरी बजाने लगे। फ़ज़ाओं में मधुरिम स्वर लहरियाँ घुलने लगीं। वादियाँ, नौका-विहार, सुरम्य वातावरण, उस में मुरली-वादन...सब का रोम-रोम थिरकने लगा। कब हम झील के दूसरे छोर पर पहुँच गए पता ही नहीं लगा। हम नाव को वहीं खड़ी कर के शूटिंग का मुआयना करने लगे। इन की लगभग ढाई सौ लोगों की टीम थी। झील में से फ़व्वारा चलने लगा, जिस से वृक्षों, लताओं को भिगोयो गया। फिर एक मशीन द्वारा धुएँ के बादल बनाए गए। वाकई अस्ती बादल लग रहे थे। एक नाव द्वारा दो-तीन कैमरे झील के दूसरे छोर पर ले जाए गए। गाने की धुन बजने लगी। डायरेक्टर स्वयं नाच कर सही जगह चुनने लगे। हवा के बड़े-बड़े पंखों द्वारा नवली बारिश होने लगी।

इधर एक घण्टा पूरा होने में ही था। हम थोड़ी देर और-और कर के समय को टालते रहे। शूटिंग में काफ़ी देर लग रही थी। उधर हमारा मन दुखी हो रहा था कि कैसे ठहरें कुछ देर और। तभी एक नाव में से कुछ युवक उतर कर किनारे पर खड़े हो गए शूटिंग देखने हेतु। हमें यह आइडिया अच्छा लगा। हम ने मल्लाह को नाव किनारे पर ले जाने को कहा। हम लोग भी वहीं उतर गए। जहाँ शूटिंग होने ही वाली थी। लेकिन अब तो स्वप्निल भी चलो-चलो की ज़िद करने लगी। सब के पेट में चूहे कूद रहे थे। हमें समझ में नहीं आ रहा था कि कैसे कुछ देर और रोकें। तभी आवाज़ आई कि 'लोलो' को बुलाओ। स्वप्निल बोली मम्मी करिश्मा आने वाली हैं, लोलो उस का ही प्यार का नाम है, मैं ने एक जगह पढ़ा था। 'लोलो' एक मिठाई होती है जो करिश्मा को बहुत पसन्द थी, इस लिए उस की माँ बबीता ने उस का नाम 'लोलो' रख दिया। हमें कुछ रहत मिली, हम ने यही कह कर इन लोगों को रोक लिया। लेकिन काफ़ी देर तक भी लोलो के आने का कोई पता ही नहीं। पेड़ों की नमी सूख गई, धुएँ के बादल उड़ गए। पुनः सैट तैयार हुए, धुआँ उड़ा, बारिश हुई। सैट, सेट किया गया। डायरेक्टर बार-बार 'लोलो-लोलो' आवाज़ लगाता रहा। तभी एक महाशय आ कर बोले कि आप के ड्राइवर महोदय आप को खोज रहे हैं। अब तो जाना ही होगा, कोई बहाना नहीं चलेगा, दो घण्टे हो चुके थे। हम लोग लौटने लगे कि पंकज जी वहीं आते मिले। हमारी दिली इच्छा जान कर बोले दो-पाँच मिनिट में शूटिंग होने ही वाली है, देख लीजिए, ऐसे अवसर बार-बार नहीं मिलते। आ...हा! हमारे मन की बात कह दी उन्होंने, हम ने उन को ख़ूब धन्यवाद दिया। वहीं शूटिंग के कार्यकर्ता भी 'लोलो' की प्रतीक्षा में बोर हो चुके थे। उन में से एक हम से स्वतः ही बोला, क्या हाल है मैडम। हम ने कहा कि ठीक है। फिर हम ने उन से फ़िल्म का नाम, उन के कार्य अनुभव सहित कई फ़िल्मी रोचक जानकारीयाँ प्राप्त कीं।

श्री इब्राहीम 'अश्क' जो अभी फ़िल्मी गीतकार हैं। उन से हमारी पत्रों द्वारा अच्छी पहचान है, उन के बारे में पूछा, उन्हें नमन कहलवाया था। बात यह थी कि वो लोग भी बोर हो रहे थे। इस लिए हम से बतिया कर वक़्त पास करे रहे थे। हमारी भी यही हालत थी। वैसे शूटिंग देखने वाले लगभग 50-60 दर्शक यहाँ मौजूद होंगे। शायद हमारे चहरे की सरलता देख कर उन्होंने बात की हो, तभी करिश्मा जी हरी ड्रेस में हाथ में दुपट्टा लिए हुए पधारी, इसी के साथ सारी टीम हरकत में आ गई। यूँ तो चटख धूप खिली हुई थी, फिर भी रिफ़्लेक्शन के लिए बड़ी-बड़ी एल्यूमीनियम शीटें लगाई हुई थीं। कैमरा ऑन हुआ, करिश्मा जी ने पहले बालों पर कंघी की, फिर डेक ऑन हुआ, गाने की धुन बजने लगी। लगभग 20-25 फ़ीट तक करिश्मा दुपट्टे को पकड़ कर सर के ऊपर लहराती हुई, गोल-गोल घूमती हुई चली, शॉट ओके हो गया, पहली ही बार में, फिर उन्होंने बाल सँवारे, आईना पकड़े हुए एक व्यक्ति सामने खड़ा हुआ और शॉट चार बार दोहराया गया। शूटिंग ख़त्म होते ही दर्शक आगे बढ़ने लगे, लेकिन टीम वालों ने मना कर दिया। लेकिन दर्शक कहाँ मानने वाले थे। फ़ोटो लेने के लिए कैमरों के बटन दबाने शुरू कर दिए। फ़्लैश पर फ़्लैश चमकने लगी। शूटिंग के वक़्त फ़ोटो लेना मना था, ठीक भी है, वर्ना फ़्लैश भी फ़िल्म में शूट हो जाएगी। हम ने करिश्मा को यहाँ से बिल्कुल करीब से देखा। एकदम सन्तुलित शरीर वाकई अच्छी लग रही थी। शॉट के बाद वह वापस अपनी गाड़ी में बने केबिन में चली गई। बाद में मालूम पड़ा कि भोजन के उपरान्त मैडम आराम फ़र्मा रही थीं, इस लिए विलम्ब से शूटिंग हुई। बात सही भी थी और इन के नखरे भी होते ही हैं। दोनों ही बातें सही हैं।

हाँ, फ़िल्मों के लिए ये लोग काफ़ी महनत करते हैं। 4-5 सैकण्ड की शूटिंग के लिए इन्हें 3-4 घण्टे लगे। जबकि पूरी फ़िल्म होती है लगभग ढाई घण्टे की और कितनी ही बार दर्शक एक मिनट में कह देते हैं, यार फ़िल्म बेकार है। सारे किए-कराए पर एक मिनट में पानी फिर जाता है। फ़िल्में चलती हैं तो करोड़ों रुपए कमाए जाते हैं, फ़्लॉप होती हैं तो बर्बाद होने में भी देर नहीं लगती, दोनों ही बातें हैं, ये भी व्यापार के उसूल हैं। अब क्या था, वो लोग ताम-झाम समेटने लगे। हम तो फूले नहीं समा रहे थे। साहब, आखिर शूटिंग देख ली थी हम ने। बरसों की इच्छा पूरी हुई थी हमारी। हम लोग कार तक आए, तिवारी जी से खाने की अनुमति ले कर वहीं खाना खाया जो अपेक्षा से अच्छा मिल गया, अन्य पर्यटक भी वहीं भोजन का आनन्द ले रहे थे। साथ में लगी एक मेज़ पर कई लड़के लोग बैठे थे। उन में से किसी बात पर एक लड़का कहने लगा- यार! खाना तो रोज़ ही खाते हैं, शूटिंग तो आज ही देखने को मिली है। चलिए, हमारे विचारों का साथी कोई तो मिला। रेस्त्राँ ऊपर रोड से लगा हुआ था। फ़िल्म वालों की गाड़ियाँ नैनीताल की तरफ़ दौड़ने लगीं। हम पेमेण्ट कर रहे थे तभी दीनू मोरिया की कार भी खाना हुई। स्वप्निल वहीं रोड पर कार के पास खड़ी थी।

## भीम ताल

हम ने भी भीमताल की तरफ़ रुख़ किया। रास्ते में देखते क्या हैं कि दीनू मोरिया की कार हमारी कार के आगे-आगे चल रही है। वह कार के पीछे वाली शीट पर विराजमान है एवं हसीन

वादियों को निहार रहा है। स्वप्निल ने ही हमें उन की कार बताई थी। हम लोग काफ़ी लेट हो चुके थे, सो, पंकज जी उन की कार को ओवरटेक करना चाह रहे थे। ख़ूब हॉर्न बजाया, ख़ूब कोशिश की, मगर उन के ड्राइवर ने साइड नहीं दी। साइड मिल जाती तो एक बार और सामने से देख लेते। शूटिंग भी हम इस लिए देखना चाहते थे कि फ़िल्मी किरदार वास्तविकता में वैसे ही लगते हैं क्या? ये ही देखना था, सो देख लिया। करिश्मा काफ़ी मेकअप में थी फिर भी प्रत्यक्षतः सामने थी ही। दूसरी बात यह कि शूटिंग कैसे होती है। क्या वाकई जो दिखाते हैं वह होता है या...। वाकई यहाँ सब बनावटी ही था। बारिश, बादल, रोशनी सब कुछ नक़ली। ख़ैर इस में बुराई भी क्या है, डायरेक्टर बारिश या बादलों की प्रतीक्षा करने लगे तो एक फ़िल्म में ही 10-20 साल लग जाएं और फिर दर्शकों को तो मनोरंजन चाहिए ढाई घण्टे का। वैसे भी सब कुछ काल्पनिक ही होता है। पर्दे पर हम सब कुछ ख़ूबसूरत देखना चाहते हैं, वैसे ही दिखाया भी जाता है। अरुल से भी बहतर और क्या चाहिए 20-25 रुपए में। अन्ततः हमें साइड मिल ही गई, एक मोड़ पर उन की गाड़ी नैनीताल की ओर मुड़ी एवं हमारी गाड़ी भीमताल की ओर। शायद, साइड इस लिए नहीं दी गई होगी कि कोई उन की गाड़ी के आगे आ कर रास्ता रोक दें। कुछ ऐसा ही रहा होगा, जैसा हम सोचते हैं। कुछ गड़बड़ करने लग जाए या बदतमीज़ी पर उतर आए। दीनू जी के साथ मात्र एक पुरुष और बैठे थे। लोगों का कोई भरोसा भी नहीं है। वैसे ही जनता इन के पीछे पागल होती है, कई बार अदाकारों के साथ ऐसी वारदातें होती भी रही हैं। अतः फ़ूँक-फ़ूँक कर कदम रखने पड़ते हैं। कहने का तात्पर्य है कि अगर पीछे की गाड़ी में ग़लत लोग हों तो कुछ भी कर सकते हैं। यह बात हमें के.पी.जी ने बताई जो हमें सही भी लगी। ऐसे मुआमलों में इन के विचारों का जवाब नहीं। किसी पर आसानी से विश्वास नहीं करना, ज़रूरत से ज़्यादा सावधानी बरतना, इन का सिद्धान्त है, जो वर्तमान समय में ज़रूरी भी है।

अभी जिस सात ताल से हम घूम कर आ रहे हैं, वह नैनीताल से 21 किमी. मीटर दूर है, सागर तल से 1371 मी. ऊँचाई पर है। उल्लेखनीय है कि यहाँ अमेरिका के मिशनरी रेवारेण्ड स्टानले जॉन्स का आश्रम है, जिस का नाम भी सातताल आश्रम है। हाँ, इस ताल की लम्बाई 990 मीटर, चौड़ाई 315 मीटर व गहराई 150 मीटर है। स्टानले जॉन्स ने यहाँ आश्रम इसी लिए तो बनवाया है कि उन्हें यह स्थान बहुत प्रिय लगा। इस की नैसर्गिक छटा पर वे मोहित हो गए।

जैसे ही हम भीमताल पहुँचे शाम गहराने लगी। अतः अधिक देर नहीं ठहर सके। वाह! यह ताल भी बेहद मनोरम निकला। पहाड़ी की सुन्दर तलहटी में सुशोभित, पहाड़ी भी विशाल व काफ़ी ऊँची है। दूसरी तरफ़ खुला हुआ था, साथ ही केन्द्र में ख़ूबसूरत टापू जिस में प्यारा-सा उद्यान अपनी उपस्थिति दर्ज करवा रहा है। इस लासानी मंज़र को हम देखते रह गए। नैनीताल का सब से बड़ा ताल भीमताल, भीमाकार होने के कारण ही शायद इसे यह नाम दिया गया होगा। हमें तो यह इतना दिलकश लगा कि काश! शब्दों में बयाँ कर पाते। जल पर तैरती तितलियों-सी नौकाएँ इस सौन्दर्य में चार चाँद लगा रही थीं। नौका विहार का मन तो बहुत हुआ मगर हनुमानगढ़ भी जाना था, 'सनसेट' के देखने के लिए और 'सनसेट' तो सनसेट के समय ही देख सकते हैं। आज हमें 'नकुचिया ताल' भी जाना था, मगर शूटिंग में विलम्ब हो जाने के कारण इसे छोड़ना पड़ा।



भीमताल भी 1371 मीटर की ऊँचाई पर ही है। इस की लम्बाई 265 मीटर, चौड़ाई 175 मीटर तथा गहराई लगभग 15-20 मीटर बताई जाती है। नैनीताल से इस की दूरी 22.5 किमी. है। नैनीताल की तरह ही इस के भी तल्लीताल व भल्लीताल दो कोने हैं। तापू सुरम्य पिकनिक स्थल है। वहाँ पर अच्छे रेस्त्राँ हैं। वैसे ही इस ताल का सम्बन्ध महाभारत के भीम से भी जोड़ा जाता है। भीम ने ही ज़मीन खोद कर इस की उत्पत्ति की थी। ऐसा कहा जाता है। द्रोपदी की प्यास बुझाने के लिये भीम ने गदा से प्रहार किया और जल स्रोत फूट पड़ा, वहीं यह झील बनी। वास्तविकता तो ईश्वर जाने। भीमेश्वर मन्दिर भी यहाँ है जिसे या तो भीम ने बनवाया होगा या उस की स्मृति में बनाया गया होगा, दोनों ही किंवदन्तियाँ प्रचलित हैं। इस लेक में मछली के शिकार की व्यवस्था भी है। कुछ नहरें भी इस में से निकाली गई हैं। जिन से सिंचाई होती है। यहाँ पर टेलीविज़न का कारखाना भी है। इस की एक धारा 'ग्वाला' नदी में भी मिलती बताई है। हाँ, भीमेश्वर मन्दिर महादेव जी का मन्दिर है। जब हम इस ताल का अवलोकन कर रहे थे, तब वहीं खड़े कुछ युवक परस्पर वार्तालाप कर रहे थे कि कल नैनीताल के एक मन्दिर में शूटिंग होगी। वैसे जहाँ तक शूटिंग का सवाल है, पूरा नैनीताल ही इस के लिए सुन्दर स्थल है।

यहाँ का तो ज़र्रा-ज़र्रा, चप्पा-चप्पा इतना मोहक है कि आँखें बन्द कर के कोई भी इसे कैमरे में कैद कर सकता है। यहाँ के लोगों ने बताया कि यहाँ तो बारह महीनों शूटिंग चलती रहती है। यहाँ के निवासी तो ध्यान तक नहीं देते। कलाकार लोग भी यहीं घूमते रहते हैं। सही भी है जो चीज़ नहीं मिलती, आदमी उस के लिए ही तरसता है, जब मिल जाती है तो 'घर की मुर्गी दाल बराबर' हो जाती है। अभी पिछले सप्ताह ही हम ने 'अन्दाज़' मूवी देखी थी जिस का प्रारम्भ ही नैनीताल झील के दर्शन से होता है। इस में कैमरा झील के चारों तरफ़ घुमा दिया गया था बसा अरे हाँ, हम ने जिस फ़िल्म की शूटिंग देखी थी उस का नाम 'बाज़' था। यह फ़िल्म हम ने कुछ महीनों पूर्व देख ली है, बड़ा अच्छा लगा। जैसा वहाँ देखा, वैसा ही लगा। पृष्ठभूमि में दिखाए गए बादल, भीगे पेड़ नज़र नहीं आए। वैसे भी दो-पाँच सैंकेण्ड में क्या-क्या नज़र आ सकता है। हम ने घर पर सीडी भी मँगवा कर देखी, जिस में एक गाना निकाला हुआ था, वही बादलों के दृश्य वाला। दूसरा दीनू मोरिया द्वारा करिश्मा को पानी पिलाने वाला दृश्य, हम ने बार-बार स्थिर करके देखा। इस फ़िल्म की कहानी से शायद आप बोर हो चुके होंगे, अच्छा भई, इसे यहीं विराम देते हैं और चलते हैं- धूपगढ़।

## धूप गढ़

वही सुन्दर लहराती हुई वादियाँ, रास्तों व गगन चुम्बी वृक्षावलियों का लुत्फ़ उठाते हुए हम पहुँचे हनुमानगढ़, जहाँ पहले से ही सैलानियों का ताँता लगा हुआ था। अभी सूर्यास्त होने का वक़्त था। तिवारी जी बड़ी तेज़ गति से कार चला कर लाए थे। पहले हम ने संकट मोचन हनुमान जी के दर्शन किए। मन्दिर भी सुन्दर व प्रतिमा भी आकर्षक। उन का मुकुट देखते ही बनता था, बड़ी सुन्दर कलात्मक व विशाल प्रतिमा। इतना प्यारा मुकुट हनुमान जी का पहली बार देख रहे थे। सर्दी काफ़ी बढ़ गई थी। के.पी. जी व 'यकीन' साहब ने तो ऊनी कपड़े पहने हुए थे। मन्दिर के

परिसर में इधर-उधर घूमे, अच्छा तो लग रहा था, मगर फ़र्श इतना ठण्डा कि पैर नहीं रखे जा रहे थे, जैसे कि बर्फ़ ही हो। अन्दर तक सिहर गए हम चारों। हम ने पण्डे जी से कारण पूछा तो बोले, यहाँ के सर्द वातावरण का असर है। सर्दी में तो यहाँ बर्फ़ ही बर्फ़ हो जाती है, जिसे हटा-हटा कर हम लोग परेशान हो जाते हैं, अभी तो सर्दी ही क्या है? हाँ, सीढ़ियों पर जरूर मेट बिछी हुई थी, ताकि दर्शनार्थियों के पैर ठण्ड से बच सकें। यहाँ फुलवारी भी बड़ी प्यारी थी। गेंदा तो चटख रंगों में खिला हुआ था।

अब सूर्यास्त की बारी थी। यहाँ पहाड़ों पर बादल तो छाए हुए रहते ही हैं, इस कारण सूरज दादा पहाड़ी के पीछे उतरने के पूर्व कुछ ऊँचाई पर ही बादलों में खुद को छिपा लेते हैं। बेचारे सूर्य दादा, बादलों की शरारतों के सामने इन की कभी चली ही कहाँ है। उन का दिखना, न दिखना इन के वश में रहता है और फिर भी इन की महरबानी देखिए जो बादलों को इतना चमकदार स्वर्णिम व चटख बना देते हैं, जिन्हें दुनिया देखती ही रह जाती है। दूर-दूर तक एक के बाद एक पर्वत-मालाओं की शृंखला, उन के रिक्त स्थानों में आराम फ़र्माती दुग्ध-धवल धुन्ध, ऊपर से चुम्बन लेते मेघा और उन में डूबते सूरज दादा, वाह क्या दृश्य है! कई कैमरे बार-बार ऑन हो रहे हैं। फ़्लैश की चमक एक के बाद एक कौंध रही है। कोई सैलानी हथेली पर रख रहा है सूरज को तो कोई अपनी आँखियों के सामने, कोई किस मूड में तो कोई किस मूड में खड़ा हो कर, इस समूचे सौन्दर्य को कैमरे में कैद करने की प्रतिस्पर्द्धा में शामिल है। सब की दृष्टि टिकी हुई है क्षितिज पर जैसे अर्जुन की दृष्टि चिडिया की आँख पर थी। सब निर्मिष हो कर अद्भुत दृश्य को देखने के लिए उत्सुक थे। देश क्या दुनियाभर के सैकड़ों सैलानी यहाँ इकट्ठे हो गए थे। हम ने भी स्वप्निल के साथ अपनी एक-एक हथेली को ऊपर-नीचे कर के अँजुरी बना कर बीच में सूरज को कैद कर के कैमरे में उतार लिया है। नीचे हमारी हथेली, ऊपर उस की हथेली, ठीक रहा ना। एक ही स्नेह से काम चल गया। हमारे दोनों हमसफ़रों को तो फोटो खिंचवाने का शौक है नहीं। ये क्या...! देखते ही देखते सूर्य जी ने बादलों के घूँघट में स्वयं को छिपा लिया। हम ठगे से देखते ही रह गये। ठग ही लिया इस दृश्य ने तो हम सभी को। सूर्य की तरह थके-मँदे सैलानी लौटने लगे अपनी-अपनी मंजिलों की ओर।

हमारी दादी कहा करती थी कि डूबते सूरज को नहीं देखना चाहिए, इस से दोष लगता है। शायद इसी लिए कि वह एक दिन के अन्त का समय होता है और सूरज का क्षणिक अवसान होता है, जो दुःख ही माना गया है। उस के बाद अन्धकार छा जाता है, जो दुःख, निराशा, असत्य, अधर्म का प्रतीक माना जाता है। इसी लिए तो कहा गया है- ‘ओम तमसोर्मा ज्योतिर्गमय’। किसी को गिरते हुए देखना ग़लत होता है। कितनी बुद्धिमान थी हमारी दादी श्री देखो, उगते सूरज को खूब देखो जो ऊर्जा का, आशा का, उत्साह का प्रतीक है। नवोन्मेष है। सूरज ही देखना है तो सुबह का देखो, लेकिन इस आधुनिक कहलाने वाली पीढ़ी का क्या किया जाए, जो उदित सूर्य तो यदा-कदा ही देख पाती है, क्योंकि अर्द्धरात्रि के बाद सोती है तो सूर्योदय के पूर्व उठने का तो सवाल ही नहीं। जब सूर्य सिर पर आ जाता है तब आँखें खोलते हैं। बहुत से लोगों की तो दिनचर्या ही ऐसी हो चुकी है। उनके लिए “Early to bed and early to rise...” तो जैसे बीते कल की बातें हो चुकी हैं, कोई विश्वास नहीं करता अब इन जीवनपयोगी मन्त्रों में, इन्हें तो आज की पीढ़ी दफ़ियानूसी बातें कह कर नकार देती है। वक़्त-वक़्त की बात है कि अब सूर्यास्त को देखना

परमानन्द का विषय तथा पर्यटन का विशेष आकर्षण बन गया है। बेताब-से दौड़ते हैं लोग, इसे देखने। एक कविता पढ़ी थी हम ने, जिस का भाव यही था कि किसी को गिरते हुए देख कर उठाना, सहलाना तो दूर की बात है, अब तो ऐसा होने पर लोग आनन्दित होते हैं, यही है वर्तमान की त्रासदी।

## तल्ली ताल

हम लोग भी अब नैनीताल की तरफ़ हो लिए। थोड़ा नीचे उतर ही रहे थे कि पंकज जी ऊपर से ही इशारा करते हुए बोले कि घाटी में जो मन्दिर दिखाई दे रहा है, वह नैना देवी का है, अभी जाते समय दर्शन कर लीजिएगा। तभी पहाड़ी मोड़ पर अचानक एक कार सामने आ गई, 'यकीन' जी का हाथ स्टीयरिंग पर दौड़ा और पंकज जी ने ब्रेक लगाया, एकदम ज़ोर का झटका लगा, गाड़ी थम गई। यह सब एक सैकण्ड से भी कम समय में हुआ होगा। हम लोगों को सारी स्थिति बाद में समझ आई, हमारे रोम-रोम खड़े हो गए। बाल-बाल बचे, जान बची लाखों पाए। हुआ यह कि तिवारी जी मन्दिर दिखाने में लग गए और कार सड़क के बीच में थी ही, उन का ध्यान नीचे मन्दिर पर था, उसी क्षण सामने मोड़ से अचानक दूसरी कार आ गई, जो अपनी साइड पर थी। हमारी कार ही बीच में थी, न जाने किस की दुआएं काम आई, ईश्वर की कृपा हुई, उस की मन से हाथ जोड़ कर दया स्वीकार की। पंकज जी भी घबरा से गए। वो तो 'यकीन' साहब को कार चलाना खूब आता है, वे ड्राइवर के पास ही बैठे थे, सो त्विक निर्णय ले लिया। वाकई ड्राइविंग के समय केवल और केवल ध्यान गाड़ी पर ही होना चाहिए। फिर पहाड़ी रास्तों पर तो विशेष कर, इसी लिए तो हर मोड़ पर सावधानी बरतने के लिए निर्देश लगे हुए होते हैं।

ईश्वर की कृपा और आप की दुआओं से हम महफूज़ होटल आए। आधा-एक घण्टा सब ने आराम किया, फिर वहीं खिड़की में बैठ कर चाय पी, जहाँ से नैनी झील का विहंगम दृश्य सामने दिखाई दे रहा था, जिस ने चाय के ज़ायके को और बढ़ा दिया था। कुछ देर बाद हम लोग फ़्रेश हो कर, माल रोड पर तल्लीताल से मल्लीताल की ओर चहलकदमी करने निकल पड़े। इस ताल का मल्ला भाग मल्लीताल व निचला भाग तल्ली ताल कहलाता है। मल्लीताल पर एकदम प्लैट खुला-सा मैदान है। यहाँ शाम को सैलानियों का जमघट जमा हो जाता है, जहाँ से सन्ध्या के समय सम्पूर्ण नैनीताल का जगमगाता दृश्य अनुपम बन पड़ता है। मल्लीताल के इस मैदान में आए दिन खेल-तमाशे, सांस्कृतिक कार्यक्रम यानी नैनीताल के सारे भव्य आयोजन यहीं होते हैं।

चलिए, घूमने का लुत्फ़ उठाएं। झील के किनारे टहलते हुए हम काफ़ी दूर तक निकल गए। यहाँ पर मल्लीताल की ओर जाने के लिए झील के किनारे कुछ नीचे अलग से सड़क बनी हुई है, पैदल चलने वालों के लिए। शाम को मल्लीताल से तल्लीताल को वाहन नहीं चलते ताकि पर्यटक सुहानी शाम का बख़ूबी लुत्फ़ उठा सकें। एक तरफ़ झील का किनारा, वादियों की सुष्मा दूसरी तरफ़ विद्युत छटा से दैदीप्यमान दुकानें, शो-रूम, होटल वाह! क्या कहना इस अनोखी व सुहानी शाम का। शीतल मन्द-मन्द पवन के झोंकों में दिन भर की जो थोड़ी थकान थी, यँ ही छू-मन्तर

हो गई, रोम-रोम तरो-ताज़गी से भर गया। वो रोमांचित शाम अविस्मरणीय बन गई। कब हम कितनी दूर पहुँच गए पता ही नहीं चला। शनैः शनैः निशा गहराती गई। रेशनी में नहाया दीपित नैनीताल किसी स्वर्णिम लंका नगरी से कम नहीं लग रहा था। हमें तो लंका नगरी से भी ज्यादा आलोकित लगा। लंका का जैसा वर्णन पढ़ा है, उस के अनुसार कह रहे हैं। वह तो मात्र पढ़ा भर है, यह दृश्य तो साक्षात् था। पानी में घुलती रेशनी जैसे किसी ने कंचन पानी में घोल दिया हो। बिल्कुल मायावी नगरी लग रही थी। निरन्तर देखते-देखते भी आँखें तृप्त होने का नाम नहीं ले रहीं थीं। झील के दूसरी तरफ़ बाज़ार में जा कर कुछ खरीदना था, बतौर निशानी। लेकिन वो सड़क इस से लगभग तीन फुट ऊँची होगी। क्रॉसिंग बहुत आगे था। सो, पुरुष गण पहले चढ़ गया फिर हाथ पकड़ कर हमें चढ़ाया। बाज़ार की रौनक देखते ही बनती थी। जहाँ एक से बढ़ कर एक चीज़ें मिल रही थीं, मगर दाम बाप रे बाप, आस्मान को नहीं पहाड़ों की चोटियों को छू रहे थे। एक तो पर्यटन स्थल उस पर माल रोड। अभी तक जितने भी पर्यटन स्थलों यानी हिल स्टेशनों पर हम गए, जैसे-मसूरी, शिमला, अल्मोड़ा आदि सभी जगह का जो मुख्य पर्यटन बाजार या सड़क होती है, उस का नाम माल रोड ही होता है। इस नाम के पीछे क्या रहस्य है, समझ में नहीं आया, ज़रूर इस नाम की कुछ न कुछ सार्थकता रही होगी। कोई भी नाम इतना प्रचलित यूँ ही नहीं होता।

हम ने सुना भी है कि अन्य शहरों में भी माल या मालारोड अधिक ही प्रचलित हैं। हाँ, सभी माल रोड में अल्मोड़ा माल रोड सर्वाधिक प्रसिद्ध है। यानी इस की प्रसिद्धि भी है। सम्भव है यह नाम अंग्रेज़ों ने ही दिया हो, क्यों कि ज़ियादातार हिल स्टेशनों की खोज अंग्रेज़ों ने ही की है। ठण्डे देशों के वाशिंग्टन गर्म देश में आ तो गए मगर गर्मी उन्हें सताने लगी। अतः बेहद परेशान हो जाने पर उन्होंने ठण्डे स्थलों की खोज की, उन्हें बसाया, वहाँ अपना आवास ही नहीं अपितु ऐसे शहरों को राजधानियाँ भी बनाया। इस प्रकार इन स्थानों का सततां विकास होता गया और विश्व मान-चित्र पर इन का नाम उभर कर सामने आया। आज भी कितने ही स्थलों, दर्शनीय जगहों के नाम अंग्रेज़ों के विशिष्ट अधिकारियों के नाम से जाने जाते हैं या उन्हें खोजने वाले के नाम से उन का नामकरण हुआ है। मसूरी के एक प्रमुख झरने का नाम है- 'कैम्प टी फ़ॉल'। कहते हैं कि अंग्रेज़ लोग यहाँ गर्मी के मौसम में पहाड़ों की वादी में आ कर कैम्प लगा कर रहा करते थे एक कैम्प में चाय का लुत्फ़ उठाया करते थे, इसी लिए उस जगह का नाम 'कैम्प टी फ़ॉल' हो गया। कोई बड़ी बात नहीं है अगर यह सच भी है तो। अंग्रेज़ गए, लेकिन उन की संस्कृति यहाँ रच-बस गई है, जिस की जड़ें काफ़ी गहरे तक पहुँच चुकी हैं, जिन्हें उखाड़ना अब किसी के वश की बात नहीं लगती है। लम्बे समय तक किसी की सुहबत में रहो तो असर आता है और गहरा-गहरा होता चला जाता है। जहाँ तक नामकरण का सवाल है, वो लगभग शाश्वत हो जाते हैं।

हाँ, तो हम बात कर रहे थे 'माल रोड' की। आखिर, घर आ कर प्रामाणिक जानकारी के लिए हम ने शब्दकोष का सहारा लिया। जिस के अनुसार माल का अर्थ है- 'ठण्डी सड़क' एवं 'ठहरने का छायादार मार्ग'। एकदम बिन्दास वाकई पहाड़ों पर माल रोड 'ठण्डी सड़क' तथा टहलने का छायादार मार्ग ही तो होता है, जहाँ सैलानी टहलने का भरपूर लुत्फ़ उठाते हैं और ख़ूब माल दे कर और बतौर निशानी मढ़ेंगे-मढ़ेंगे माल भी खरीदते हैं। अब माल रोड को ले कर सारा संशय दूर हो गया। वास्तव में जान होती है माल-रोड शहर की। वस्तुतः ये बाज़ार पर्यटकों को लुभाने में कोई कसर नहीं छोड़ते। वो जानते हैं कि इतनी दूर से आए सैलानी कुछ न कुछ जरूर खरीदते हैं एवं

स्थान विशेष का विशेष उत्पाद तो लेते ही लेते हैं, क्यों कि उन के शहर में वो वस्तुएं न तो शुद्ध रूप में मिलती हैं न ही वाजिब दाम पर और फिर ज़ियादातर यात्री समृद्ध परिवारों से होते हैं, जिन के पास पैसों की कमी कम ही होती है। हम भी किसी से कम थोड़े ही हैं। जहाँ भी जाते हैं कुछ न कुछ ज़रूर ले लेते हैं, चाहे फिर विलप, बिंदिया या छल्ला ही क्यों न हों। अपनी हैसीयत का खयाल ज़रूर रखते हैं। वरना ये तो मन है, इस की उड़ान की कोई सीमा ही कहाँ है। इस माल रोड से बहुत कुछ लेना चाह रहे थे, मगर काले अंगूर वाला छल्ला ले कर ही तसल्ली कर ली, वो भी बतौर निशानी, ताकि घर में उसे देख-देखकर खुश होते रहें, अपने मित्रों को गर्व से बताते भी रहें, और क्या...! अब हम थकने लगे हैं, भूख भी अपना रौब दिखाने लगी है। स्वप्निल फास्ट-फूड खरीदना चाह रही है। रेस्त्राँ पर ज्ञात भी किया, मगर उस का पसन्दीदा कुछ भी नहीं मिला। अब तो पैर भी दर्द करने लगे, चला भी नहीं जा रहा था और होटल जाने का कोई साधन भी नहीं था। सो, धीरे-धीरे पैदल ही हम अपने होटल के करीब पहुँचे। आस-पास कोई ढंग का रेस्त्राँ नहीं मिला। आखिर आलू के परातों से ही काम चलाया। यह माल रोड है भाई। हाँ, यहाँ की स्थानीय बस्ती की तरफ़ जो स्थानीय बाज़ार है, वहाँ सब चीज़ें वाजिब दामों पर, अच्छी मिल जाती हैं, यह बात वहाँ के एस.टी.डी. वाले ने बताई, लेकिन ये बातें अजनबी लोग कैसे जान पाते? खैर अगले दिन से हम ने उसी बाज़ार में सारे काम किए।

मालरोड खत्म होता है, वहीं बस स्टैण्ड से ऊपर की तरफ़ लोकल बाज़ार प्रारम्भ हो जाता है। अरे हाँ, सुना आप ने, हमारे कोटा में भी मालरोड है। भोजनोपरान्त हम ने कोटा फ़ोन किया तथा कोसानी, अल्मोड़ा, रानीखेत के भ्रमण की जानकारी भी ली, क्यों कि एस.टी.डी. वाले की ट्रेवलिंग एजेन्सी भी थी। हिना ट्रेवल्स नाम से। वैसे हमारे ड्राइवर साहब ने दिन में हम लोगों के दो-दिन के भ्रमण की बुकिंग करवा दी थी। इन दो दिनों में उपरोक्त तीनों जगह हमें घूमना था। दिन में भ्रमण के समय उन से कुछ यूँ ही बात कि थी कि उन्होंने ने एक जगह कार रोक कर बुकिंग करवा दी, उन्हें यहाँ की सेवाओं की हम से ज़ियादा जानकारी है ही, ये जान कर हम लोग आश्चर्य में थे। बाद में मालूम पड़ा कि नैनीताल में सर्वश्रेष्ठ सेवा हिना ट्रेवल्स की ही है। हम एस.टी.डी. पर फ़ोन कर के कुछ बात कर ही रहे थे कि उन के मैनेजर बोले कि कुछ देर पहले करिश्मा जी भी यहीं से अभिषेक बच्चन को फ़ोन कर के गई हैं। सुखद आश्चर्य हो रहा था कि इन लोगों के तो पर्सनल मोबाइल होते हैं फिर भी एस.टी.डी. पर...। खैर उन की वो जानें, हम क्यों इतना सोचें, रही होगी कोई मजबूरी। हाँ, जिस रोड पर यह एजेन्सी है वह रोड नैनीताल के आस-पास के सभी मुख्य मार्गों को जोड़ती है। आस-पास के स्थानों से आवागमन इसी सड़क से होता है। शूटिंग वाले भी इसी रोड से आते-जाते हैं। इसी लिए करिश्मा ने बीच में यहीं रुक कर बात की होगी। उस ने कहा कि इस बीच थोड़ी बहुत भीड़ जमा भी हो गई थी।

यहाँ से वापस होटल आते समय हम एक बार फिर 'अभिषेक ट्रेवल्स' से मिले, यह होटल की बग़ल में ही था। हम ने उस से खरा-खरा कर पूछा कि बस अच्छी होगी ना, तो बोला आप को कोई शिकायत नहीं होगी। बस त्रिसीटर्स होगी। पुश बैक वाली बस तो पूरे नैनीताल में नहीं है, पहाड़ों पर ऐसी बसें सूटेबल नहीं रहतीं। जब कि 10 मिनट पहले ही 'हिना' वाले से टू शीटर्स पुश बैक की बात हुई है। जो सच थी, क्यों कि अगले भ्रमण के दौरान कई स्थलों पर उस की बसें हम ने देखी थीं। लगभग 15 मिनट काफ़ी बहस हुई, लेकिन परिणाम वही- 'ढाक के तीन पात'। ये

लोग ग्राहकों को बेवकूफ बनाने के सिवा करते भी क्या हैं। बहुत सफ़ाई से पर्यटकों को परेशान करना इन की आदत में शुमार हो चुका है। अब क्या था, अपने कमरे में लौट आए। अल्मोड़ा, रानीखेत व कोसानी व्यक्तिगत रूप से जाना चाहते थे, मगर प्लानिंग नहीं कर पाए। इधर इन दोनों महानुभावों को यानी के.पी. जी एवं 'यकीन' साहब की तो ज़ियादा रुचि है ही नहीं किसी बात में। हम ने वहीं वातायन में बैठ कर सत्तू, मूँगफली व कुछ बिस्किट खाए, जिन्हें हम कोटा से ले गए थे। वाकई घर से कुछ खाने की चीज़ें ज़रूर साथ रख लेनी चाहिए। बाहर वास में ये बहुत काम आती हैं। ज़रूरी नहीं कि वक़्त पर वहाँ अपनी पसन्द का खाना मिल जाए। सम्भव है उस वक़्त हम बस या ट्रेन में हों। पुराने लोगों का तो यह उसूल रहा है कि जब भी घर से निकलो, खाना साथ ले कर ही निकलो। वे लोग तो लम्बी यात्राओं पर डिब्बे भर-भर कर सत्तू, शकरपारे, बर्फी आदि ले जाया करते थे। हमारी दादी भी यात्रा पर जाते समय ये सब चीज़ें ले जाया करती थीं। यह बात अलग है कि कुछ लोग तो खाना बनाने के सारे सामान भी साथ ले कर चलते हैं। ताकि बाहर के भोजन की खराबियों से बच सकें।

थोड़ी-बहुत पेट-पूजा करने के बाद हम ने डायरी में दिन भर की गतिविधियों को बाक़ायदा लिखा जो अभी काम आ रही हैं। हमें लिखते देख कर 'यकीन' जी बड़े शायराना अन्दाज़ में बोले कि आप को 'ज्ञान-पीठ पुरस्कार' ज़रूर मिलेगा, ये मैं आज कह रहा हूँ। वो हमारी लगन एवं लेखन के प्रति समर्पण भाव को देख कर बोले थे। दिन भर की इतनी मशक्कत के बाद भी हम रात्रि को लिखने जो बैठे थे। इस कार्य से निवृत्त हो कर हम पलंग पर आ कर आराम से अधलेट गए, जहाँ से पूरी नैनी झील पहाड़ों के आगोश में सिमटी दिपदिपा रही थी। वाह, क्या नज़ारा था। सड़कों पर केवल चहलकदमी बची थी, वाहनों से इसे लगभग निजात मिल चुकी थी।

अब केवल खामोशी का साम्राज्य था। सर्द हवा के झोकों से बीच-बीच में जल के लहराने से उस में उतरी हुई रोशनी कम्पित हो उठती थी। ऐसा लगा जैसे हवा उस की नींद में खलल पैदा कर रही है। चारों ओर घिरी पहाड़ियाँ, द्रोणाचल पर्वत की तरह टिमटिमा रही थीं, जैसे इन पर भी संजीवनी बूटियाँ दिपदिपा रही हों। यही दिपदिपाहट पानी में स्वर्ण घोल रही थी। जैसे हीरों जड़ित सोने की चादर, वो भी लहरों वाली, इस झील को ओढ़ा दी गई हो। वाकई अलौकिक दृश्य था, यह भी। बार-बार मन में यही आ रहा था कि काश! हमारा जन्म ऐसी जगह हुआ होता। इस नैसर्गिक ब्यूटी के ऊपर लाखों भौतिक सुविधाएँ निछावर की जा सकती हैं। बहुत ही भाग्यशाली हैं ये लोग, जो यहीं पैदा हुए हैं या यहाँ रहते हैं।

इसी तरह चिन्तन-मनन करते-करते निद्रा रानी हमारी आँखों में आ कर सो गई। आँखें खुली तो नैनीताल की एक ओर सुहावनी सर्द सुबह हमारे स्वागत में द्वार पर दस्तक दे रही थी। हम ने द्वार खोल कर उस का स्वागत किया, बाहर लॉन में जा कर पर्वतीय भोर के अनुपमेय सौन्दर्य का चक्षुओं से पान किया और तन-मन में आनन्द की सुरभि घुल गई, पोर-पोर नूतन ऊर्जा से शराबोर हो चुका था। कल की तरह रास्तों पर आवा-जाही प्रारम्भ हो चुकी थी। इस स्वर्णिम सुबह का सब अपने-अपने तरीके से स्वागत कर रहे थे।

हवा बहुत ही सर्द व तीखी थी, मगर उस अलौकिक आनन्द की अनुभूति में सर्दी का

अहसास नहीं हो पा रहा था। कुछ देर हम चारों वहीं लॉन में चहलकदमी करते रहे एवं गरमागरम चाय का लुफ़ भी लेते रहे। बारी-बारी से सभी नित्यकर्म एवं स्नान से निवृत्त हो कर, पुनः लॉन में चाय के प्यालों के साथ एकत्र हो गए। वहीं बग़ल में विद्यालय था, उस की घण्टी बज उठी, बालक कन्धों पर बस्ता टाँके शाला में प्रवेश करते, जैसे यहाँ कुली पीठ पर सामान ले कर चलते हैं, वैसे ही बच्चे भी छोटे कुली लग रहे थे। दोनों ही तो बोझा हो रहे थे, किस का हो रहे थे यही अन्तर था। कुछ देर बाद प्रार्थना होने लगी। वहाँ केवल महिला शिक्षक ही नज़र आईं। वैसे भी छोटे बच्चों के लिए महिला शिक्षक रखना ही उचित है, क्योंकि वे कोमल हृदय जो होती हैं। स्कूल सम्भवतः प्राइमरी ही था, प्राइवेट तो था ही। मन में आया यहीं इसी शाला में नौकरी करने लग जाए व यहीं रहने लगे। यह सब हमारे मन में ही चल रहा था, हम ने किसी को बताया भी नहीं। हाँ, बचपन से ही स्कूल जाते-जाते, यही ढर्रा देखते-देखते अब स्कूल से हमें बहुत चिढ़ होने लगी है। छोड़िए इसे यहीं। अब नाश्ते की बारी थी, सो हम और स्वप्निल पास ही बाज़ार चले गए कुछ फल खरीदने। जहाँ सेब, मौसमी व केले लिए, वहाँ सन्तरे के आकार के नींबू व रामकरेला भी देखा। नाश्ते से निवृत्त होते-होते नौ बज गए। अभिषेक ऐजेन्सी तो बग़ल में थी ही सो, वहीं सामने झील के किनारे बेंच पर बैठे-बैठे हम बस की प्रतीक्षा करने लगे, झील का साथ होने के कारण बोरियत का तो सवाल ही बेमानी था। दस बज गए लेकिन न तो एक यात्री ही दिखाई दिया न बस ही। आखिर माजरा क्या है, यह मालूम करने के.पी. जी मैनेजर के पास गए तो मालूम पड़ा कि बस अमुक जगह खड़ी है। आप को वहीं पहुँचना है। भला आदमी रात को ही बता देता तो क्या जाता। पहले उन से रास्ते के बारे में जानकारी ली, फिर सामान उठा कर चल दिए। नई जगह, पहाड़ी रास्ते, चलते-चलते भी न तो बस ही मिली, न कोई यात्री। किसी से कुछ पूछते तो यही कहते कि नाक की सीध में चले जाओ, बस थोड़ी ही दूर और। भले आदमी को कोई व्यक्ति हमारे साथ तो भेजना चाहिए था। इधर समय अलग हो चुका था। जल्दी-जल्दी पाँव उठाते-उठाते काफ़ी दूर पहाड़ी मोड़ पर वह स्थान मिला और चैन की साँस ली। लेकिन वहाँ तो बस थी ही नहीं कुछ यात्री ज़रूर बैठे व खड़े थे। मालूम पड़ा कि बस अभी नहीं आई है। काठगोदाम यात्रियों को लेने गई है, रास्ते में किसी मन्त्री के आने के कारण चक्का जाम हो गया, बस वहीं फँस गई है। 10:45 बज चुके थे। इस के पहले होटल के पास ही रिज़र्वेशन ऑफ़िस होने के कारण के.पी. जी ने कोटा का रिज़र्वेशन ज़रूर करवा लिया था।

प्रतीक्षा बढ़ी भारी पड़ रही थी, कभी इधर-उधर टहलते, कभी अटैची पर बैठते, स्वप्निल भी काफ़ी परेशान हो रही थी। वक़्त के साथ-साथ हमारा गुरसा भी बढ़ने लगा। हमारे सिवा सारे पर्यटक बंगाली ही थे। बस क्यों नहीं आ रही, सब अपनी-अटकलें लगाने लगे, कुछ को थोड़ा-बहुत गुरसा भी आ रहा था। लगभग 12 बजे बस महारानी पधारीं जो सिम्पल रोडवेज़ जैसी थी। इसे देखते ही हम सब का पारा और चढ़ गया, ऊपर से ढाई घण्टा लेट। बारह बजे तो अल्मोड़ा पहुँचना था। सब चुपचाप चढ़ गए। हम चारों कण्डक्टर से उलझते रहे, क्योंकि मालिक तो चुपचाप सटक लिया था। कण्डक्टर को हम से 550 रुपए लेने शेष थे। हम ने कहा कि ढाई घण्टे के पैसे कम कर लो या कोसानी में ले लेना, लेकिन उसे विश्वास नहीं हुआ, बोला- गाड़ी में पेट्रोल नहीं है, कैसे जाएगी। उस ने सारे यात्रियों को अपनी तरफ़ कर लिया। एक-दो जो हमारी तरफ़ थे यानी न्याय की ओर, वो भी उन की ओर हो लिए। काफ़ी कहा सुनी हुई। बोला कि आप लोग उतर

जाओ। हम भी तैयार थे, क्योंकि ऐसी बस से, ऐसे हालात में हम नहीं जाना चाह रहे थे। किसी दूसरी बस से चले जाएंगे, मगर वो पैसे भी नहीं लौटा रहा था। उसे हम पर विश्वास नहीं था, लेकिन हम उन पर यकीन करें। सारे यात्री हम से ही उलझने लगे। आखिर हमेशा की तरह सच की ही हार हुई, अन्याय जीता और हमें 550 रुपए देने पड़े तभी बस खाना हुई। वैसे हम, सभी के लिए लड़ रहे थे कि सब को ढाई घण्टे के पैसे लौटाए जाएं, मगर सब हमारे ही खिलाफ रहे।

शायद यही दुनिया का दस्तूर है। हम ही शोषण सहते हैं, तभी शोषण किया जाता है। यही त्रासदी है कि अन्याय के विरुद्ध बोलने का साहस विरले लोगों में ही होता है। इसी बात पर ‘यकीन’ जी का शेर याद आ गया-

*“बोलो भैया बोलो वरना बोल रही है खामोशी  
दिन पर दिन अब ज़ालिम का दिल खोल रही है खामोशी।”*

बस बिल्कुल असुविधाजनक थी। बातें तो मालिक ने रात को बहुत बड़ी-बड़ी की थी-मस्लन, नैनीताल में हमारी एजेन्सी का भी नाम है, इतनी बड़ी दुकान ले कर ऐसे ही थोड़े बैठे हैं, वगैरह...वगैरह।

हम पूरे तीन घण्टे विलम्ब से खाना हो रहे थे। रास्ते में हमें जाते देख कर हिना वाला बोला भी था कि आप की बस अभी नहीं गई क्या। वैसे भी पैसे देने के बाद आप कुछ कर ही नहीं सकते, उस के हवाले स्वयं को करने के सिवा। इसी लिए कहीं भी पैसे देने के पहले सौ बार सोच लेना चाहिए, फिर भी गलती हो जाती है, मानव स्वभाव जो है, ऐसा भी होता रहता है, जीवन है यह जीवना। हाँ, इस तमाम घटनाचक्र से हमें बहुत कुछ सीखने को ज़रूर मिला, ये खट्टे-मीठे अनुभव ही तो हमारी असल शिक्षा होती है, यदि हम इन पर ईमानदारी से अमल करें तो घर से बाहर निकल कर ही तो यह सब सीखा जा सकता है।

## अल्मोड़ा की ओर

अब हमारी बस खाना होती है। लेकिन यह क्या... इतनी तेज रफ़्तार और रफ़ ड्राइविंग, एक तरफ़ घुमावदार रास्ता और दूसरी तरफ़ खाईयाँ, डर-सा लगने लगा। देर हो गई वो तो ठीक है, मगर उस की हड़बड़ाहट में तेज़ गाड़ी चलाना, यह तो ‘चोरी और सीनाज़ोरी’ हो गई। विलम्ब का एक यह भी नकारात्मक पहलू बन जाता है। आखिरकार हम ने सब यात्रियों से कहा कि इस मुआमले में तो एक हो जाओ और ड्राइवर से गाड़ी धीरे चलाने को कहो। डर सभी रहे थे, बोलने भी लगे। के.पी. जी ड्राइवर के पास गए एवं धीमे चलाने को कह कर आए। तब वो गाड़ी ढंग से चलाने लगा और सब की जान में जान आई। अब तक हम नैनीताल पार कर चुके होते हैं। हमारे चारों ओर चीड़ ही चीड़ के घने वन फैले हुए हैं। गगन का चुम्बन करते ये वन, चटख हरियाली, झर-झर झरते झरने, बहते झरने, इठलाते झरने, वाह री कुदरत, यही तो है वो स्वर्गिक वैभव



जिस के लिए आदमी तरसता है, जो उस के आस-पास ही बिखरा पड़ा है। बहुत खूबसूरत है यह रास्ता। चटख धूप की किरणें पतियों पर गिर कर बिजली-सी पैदा कर रही हैं। नज़रें हटाए नहीं हटती हैं, ऐसा लगा कि इन नज़ारों को आँखों में भर लें। थोड़ी देर बाद बस पेट्रोल पम्प पर ठहरती है। हम नीचे उतरते हैं। चारों ओर बिखरे हुए सौन्दर्य को देख कर अभिभूत हो उठते हैं। क्यों नहीं सुमित्रानन्दन पन्त प्रकृति के सुकुमार कवि कहलाएँ, जिन का जन्म ही इस के बीच हुआ है। इस सुषुमा को देख कर तो पत्थरों से भी कविता फूट सकती है। यहाँ का तो कण-कण अपने आप में ही काव्य से कम नहीं है। यह वैभव उतना ही अभिभूत करता है जितनी कि सरस कविता सहृदय को गद्गद करती है। प्रकृति तो स्वयं में ही महाकाव्य क्या परमकाव्य है। वैसे भी प्रकृति और पुरुष अखिल ब्रह्माण्ड के जनक हैं। तीन घण्टे विलम्ब हो जाने के कारण गरम पानी, कैची आदि दो तीन प्वाइंट जो रास्ते में दिखाने थे, नहीं दिखाए गए। यह आश्वासन दिया कि लौटते में दिखाएंगे, जो मात्र आश्वासन ही रह गया। हाँ, लौटते में 'कैची' ज़रूर दिखाया गया।

कुछ आगे चले कि एक नदी मिली, जल इतना पारदर्शी व निर्मल कि काँच भी क्या चीज़ है, उस के आगे। इसी लिए स्वच्छ पानी के लिए 'काँच का टूक' मुहावरा प्रचलित है। इस नदी की धारा के रूप के तो अन्दाज़ ही निसाले निकले, कहीं नायिका की क्षीण-कटि सी तो कहीं उस की गदराई देह-सी तो कहीं-कहीं कई धाराओं में अपनी शोश्चियाँ दिखाती, खूब मन बहलाया इस ने हम लोगों का, वरना तो उस दिन हमारे मन की घबराहट हमें रास्ते में उतरने को बाध्य कर देती। हुआ यूँ कि बस के खाना होने के थोड़ी देर बाद ही स्वप्निल का और हमारा जी बुरी तरह घबराने लगा, कुछ समझ में नहीं आ रहा था क्या करें? ऐसा हम दोनों के साथ पहली बार हुआ था। स्वप्निल को हम ने खिड़की की तरफ़ बैठाया, ध्यान बँटाने का मशविरा भी दिया, उस की घबराहट से हम और भी परेशान होने लगे। हम भी इधर-उधर कभी पहाड़ों को तो कभी नदी को देख-देख कर ध्यान बँटाते रहे, कभी इधर बैठते कभी उधर। स्वप्निल काफ़ी छटपटा रही थी, तभी 'यकीन' साहब ने बैग में से मौसमी छील कर खिलाई, के.पी. जी ने एक गोली भी चूसने को दी। खिड़की के बाहर मुँह निकाल-निकाल कर ताज़ा हवा का सेवन भी करते रहे। मौसमी का पलेवर मुँह पर भी लगाते रहे। धीरे-धीरे घबराहट कुछ कम हुई। तब ज्ञात हुआ कि यही हाल 'यकीन' जी का भी हो रहा था, मगर उन्होंने ज़ाहिर नहीं किया ताकि हम चिन्ता न करें। कुछ घबराहट के.पी. जी को भी हो रही थी। यही अन्तर है महिला और पुरुष में। महिलाएँ बहिर्मुखी होती हैं, तुरन्त हाय-तौबा मचा देती हैं, बेचारे पुरुष सब कुछ चुपचाप सहन करते रहते हैं, इसी लिए नारी को नदी व पुरुष को सागर की संज्ञा से अभिहीत किया गया है। महिलाएँ सब कुछ उगल देती हैं, इस लिए हल्की-फुल्की होती हैं, इसी उन्मुक्तता रहने के कारण अधिक जीती हैं। इसी सन्दर्भ में 'होती हैं महिलाएँ बातूनी' हम ने कविता भी लिखी है, जो अभी-अभी हमारे 'कितनी बार कहा है तुम से' संग्रह में प्रकाशित हुई है। उस दिन तो हम ने बिना हाथ धोए ही मौसमी खा ली। हमें कुछ नहीं सूझा, वाकई 'आपातकाले मर्यादा नास्ति'।

वो तो भला हो उस खूबसूरती का, नैसर्गिक सुषुमा का जो मन लगाए रही, वरना बीच में उतरना पड़ता। मौसमी से काफ़ी सहत मिल गई। कुछ दिन पूर्व हम ने पढ़ा था कि सफ़र में नीबू का सेवन करने से जी नहीं घबराता, आज अनुभव भी हो गया। हम चारों ने यही निष्कर्ष निकाला कि हम लोगों ने बस में क्रोध किया था, उसी का परिणाम है यह। क्रोध से शरीर में विषैले पदार्थों

का स्राव होता है, ज़रूर ऐसा ही हुआ होगा। क्यों कि अभी तक जितनी भी यात्राएँ की हैं, उन में कभी न तो जी घबराया, न ही उल्टी हुई। अमूमन ऐसा होता रहता तो अलग बात थी। भई, हम ने तो इस घटना से यही सीख ली कि क्रोध करने से केवल स्वयं का ही नुक्सान होता है। सामने वाले का कुछ नहीं बिगड़ता, क्यों कि अधिकांशतः दुनिया वाले पत्थर दिल हो चुके हैं और फिर गुरसा करने से हमें हासिल क्या हुआ? अरे, एक शेर याद आ रहा है, इजाज़त हो तो खिदमत में पेश करें, अजर् किया है-

*“हो गया पत्थर-हृदय ही आदमी का  
कोई चहरा इस लिए दरपन नहीं है।”*

मालूम है आप को जो सरिता हमारी संगिनी रही, उस का नाम क्या है, उस का नाम है ‘खेरना नदी’। वाकई इस रास्ते का सौन्दर्य ग़ज़ब का रहा है, काश! हम आप को बता पाते। कुछ आगे एक पुल आता है, जिस के उस तरफ़का रास्ता रानीखेत जाता है। हम तो अल्मोड़ा जा रहे हैं, पुल के इधर ही चलना है। पहाड़ी रास्ते पर इतनी अच्छी समतल सड़क देख कर दंग हैं हम। वैसे होना तो यही चाहिए, कम से कम घुमावदार रास्तों पर तो सड़कें विशेषतः उत्तम हों ही हों। ऊटी से एक टी एस्टेट देखने जाते समय सड़कें इतनी सँकरी व ऊबड़-खाबड़ थीं कि पूछिए मता। कुछ आगे चले कि हिमाच्छादित पर्वत मालाएँ लुकाछिपी करने लगीं।

कभी पहाड़ियों की ओट से एकदम प्रकट हो जातीं तो कभी दुल्हन की तरह शर्मा कर वृक्षावलियों के घूँघट में अपना सलोना रूप छिपा लेतीं। अब क्या था, हम उन्हीं से बतियाते रहे, उन्हें नए-नए उपमान देते, कभी प्रकृति की विवित्र लीला पर विमुग्ध होते, जगत नियन्ता को धन्यवाद देते। मौसम की मादकता, इस सौन्दर्यपान में हाला का कार्य करती। अब हम सब की घबराहट नहीं के बराबर रह गई थी।

ऐसे आनन्द के क्षण कब पंख लगा कर उड़ गए, मालूम ही नहीं चला और गाइड महोदय अपने अन्दाज़ में बस को सम्बोधित करने लगे- अब हम अल्मोड़ा में प्रवेश करने वाले हैं। यह वही अल्मोड़ा है, जहाँ की बाल, माल, पटाल प्रसिद्ध है। बाल यानी बाल मिठाई, माल यानी मालरोड, पटाल यानी यात्री बाज़ार का नाम। माल रोड यहाँ का सभी अन्य हिल स्टेशनों से लम्बा है। बाल मिठाई को बड़े भी खाते रह जाएंगे। पटाल बाज़ार में शॉपिंग का आनन्द ही कुछ और है। और एक बात जिस का आप को पूरा ध्यान रखना है कि अल्मोड़ा की स्त्री, मनियादार का मिस्त्री, नैनीताल का मौसम और बम्बई का फैशन कब बदल जाए कोई भरोसा नहीं। अतः किसी भी रूपसी से आँखें चार होने लगे तो यह बात ज़रूर याद कर लें, फिर हमें दोष न दें कि पहले क्यों नहीं बताया, यदि कुछ गड़बड़ हो जाए तो। आगे खुदा खैर करे।

बस यहाँ केवल एक घण्टा रुकेगी, क्यों कि हम काफ़ी लेट हो चुके हैं। पुनः बस में से ही विवेकानन्द स्मारक बताते हुए बोले कि यह विवेकानन्द स्मारक है, यहीं से देख लें, बस यहाँ नहीं रुकती है और उन्हीं ने अपने मार्गदर्शीय उद्बोधन को सधन्यवाद समाप्त किया, लेकिन बंगालियों की ज़िद, क्या किया जाए वो कब मानने वाले थे, आखिर बस रुकवा कर ही छोड़ी और

सारे के सारे पहाड़ी पर उतर कर चले गए साहब, स्मारक देखने। हम लोग वहीं आस-पास टहलते रहे। इन्हें वापस लौटने में पूरा आधा घण्टा लगा। इधर बेचारे कण्डक्टर साहब जल्दी-जल्दी चिल्लाते ही रहे। कुछ आगे चल कर बस बाज़ार में ठहरी, वहाँ कई रेस्टोरेंट थे। गाइड महोदय ने सब को लंच लेने के लिए कह कर एक घण्टे में वापस लौट आने की हिदायत दी। हम लोग भी भूख से बेहाल हुए जा रहे थे। एक अच्छा-सा भोजनालय मिल भी गया। पहले कुछ परेश हुए और सब ने जम कर खाना खाया। खाने से पहले अचार मिला था, उसे हम लोग खाना आने के पहले ही चट कर गए। अपनी भूख से औरों की भूख का अहसास हमें खूब हुआ और उन के प्रति मन में करुणा का भाव स्वतः ही उदय होने लगा था। शायद व्रत-उपवास के पीछे मूल अवधारणा यही रही होगी कि हम दूसरों की भूख के दर्द को महसूस कर सकें। इस्लाम धर्म में तो रोज़ा रखने का एक उद्देश्य यह भी है कि भूखे रहने से आदमी को अन्य इंसानों की भूख का अहसास हो सके और वह उन की मदद करने को आगे आए। दूसरी बात हमारी अल्प बुद्धि में जो आती है वह यह कि उपवास से भोजन की बचत भी होती ही है। वही भोजन कहीं न कहीं किसी ज़रूरतमन्द के काम आता ही आता है। एक दिन में हम जितना खाना खाते हैं उस के नहीं खाने से उतनी बचत तो होती ही है।

खाना खा चुकने के बाद वेटर बिल ले कर आया और धीरे से बोला साहब, मैं ने आप की चपातियों को कम गिना है। तीन-चार चपाती कम लिखवाई है, वो पैसे टिप के रूप में हमें दे दो तो कृपा होगी। हाँ, मालिक को मत बताना कुछ देर हम चारों अजीब कश्मकश में पड़ गए। सच का साथ दें या झूठ का या विवशता का। न जाने क्यों उस लड़के पर दया-सी आ रही थी। वह चोर नहीं मजबूर नज़र आ रहा था। हम ने उसे चुपचाप चार चपातियों के पैसे दे दिए, जो हम ने उचित समझा। मालिक तो उन का खून चूस-चूस कर लखपति बना बैठा था। उन्हें पूरी मज़दूरी नहीं देता होगा। यानी शोषण होता है। यही शोषण और अन्याय, ग़रीब को झूठ बोलने के लिए मजबूर करता है। दोष इस बालक का ही नहीं था, इस के पीछे मालिक द्वारा किए जाने वाले शोषण का था। यदि व्यवस्थाएँ सही हों तो अपराध होने का सवाल ही नहीं उठता। ग़लत व्यवस्थाएँ व परिस्थितियाँ अपराध के पीछे मुख्य भूमिका निभाती हैं। आज की अर्थव्यवस्था के तहत ग़रीब और ग़रीब तथा अमीर और अमीर बनता जा रहा है। यदि श्रम का पूरा-पूरा पारिश्रमिक आदमी को बराबर मिले तो न कोई ग़रीब रहे न ही कोई अमीर बने। सब ठीक-ठाक रहे। क्यों कि ग़रीबी बहुत बड़ा श्राप है और धन को छठी इन्द्रिय भी कहा गया है। यही अभिशाप हज़ार पापों का जन्म दाता है। कहा भी तो गया है- ‘बुभुक्षितः किम न करोति पापम्।’

अब कुछ देर तफ़रीह करते हैं। वहीं बाज़ार में एक दूकान से बाल मिठाई खरीदी। यह चॉकलेट व मावे की बनी हुई लगी, जिस पर साबूदाने जैसे सफ़ेद शक्कर के दाने चारों तरफ़ चिपके हुए थे। खाने में अच्छी भी लगी। वैसे यह मिठाई नैनीताल में भी मिल रही थी, मगर वहाँ भी यही बताया गया था कि अल्मोड़ा में अच्छी मिलती है। कुछ कलाकन्द भी लिया वो भी अच्छा निकला। इस शॉप पर दो महिलाएँ बैठी हुई थीं। पहाड़ी महिलाएँ काफ़ी महनती होती ही हैं। दूकान पर बैठना तो उन के लिए छोटा-मोटा काम है। महिलाएँ क्या, वहाँ के सभी निवासी कड़े श्रम से ही अपनी आजीविका चलाते हैं। इन में शहरियों जैसी चालाकी बिल्कुल नहीं होती। जीवन एकदम अलमस्त व निश्चिन्त, क्यों न हो, शहर की चकाचौंध व मिथ्या सुख-सुविधाओं से कोसों दूर हैं ये लोग।

केवल प्रकृति ही इन की पालक व सहचरी हैं, इस लिए उस की ही तरह सरल व भोले हैं ये। जीवन का सही आनन्द ये ही भोग रहे हैं। खैर, हमारी ड्रेस देख कर हम से पूछा कि आप राजस्थान से आए हैं। हम ने हाँ में सिर हिला दिया। फिर पूछती हैं वहाँ तो काफ़ी गर्मी पड़ती है ना। हम ने कहा हाँ, बहुत गर्मी है, तभी तो हम यहाँ कुछ दिनों के लिए ठण्डक के अहसास के लिए आए हैं, फिर पूछा आप को तो यहाँ सर्दी लगती होगी। हम ने कहा नहीं...। बल्कि यहाँ तो मौसम बड़ा सुहाना लग रहा है, बहुत ही प्यारा। हम मन ही मन सोचने लगे, कितनी भाग्यशाली हैं ये ललनाएँ, जो पर्वतों में रहती हैं। वैसे एक बात बताएँ, नैनीताल, अल्मोड़ा आदि शहरों में पहाड़ी रहन-सहन, पोशाकें आदि कम ही देखने को मिलीं। यहाँ पर नगरीय संस्कृति पूरी तरह हावी है। हाँ, आसपास के ग्रामीण इलाकों में ज़रूर पहाड़ी संस्कृति के दर्शन हुए। मनाली में ज़रूर पूरी तरह पर्वतीय संस्कृति रची-बसी हुई है। वहाँ के बारे में जैसा पुस्तकों में पढ़ा था, वैसा ही दर्शनीय था। उन के घर, उन के परिधान, महिलाओं के स्कार्फ, पुरुषों के सर की टोपियाँ, कुल मिला कर सम्पूर्ण रूप से आन्वलिक रहन-सहन। शायद इसी लिए कि वह शहर नहीं अपितु ग्रामीण अन्वल है।

इधर के.पी.जी. बोले भई, एक घण्टा हो चुका है, चलो भी वरना बस छोड़ जाएगी। हम सब बस के पास आ कर खड़े हो गए। लगभग पन्द्रह मिनिट के बाद बस रवाना हुई। चलिए, बस में चलते-चलते अल्मोड़ा की कुछ और बातें हो जाएँ। अल्मोड़ा जो सागर-तल से 1646 मीटर ऊँचा है और 11.9 वर्ग किलोमीटर के क्षेत्र में विस्तार पाता है। अन्य पर्वतीय नगरों की ही भाँति यह पहाड़ों एवं घाटियों में रचा-बसा है। सच पूछा जाए तो अल्मोड़ा कुमाऊँनी संस्कृति का प्रमुख केन्द्र है। इस संस्कृति के गीतों, नृत्यों व अन्य रीति-रिवाजों की महक है, यहाँ के कण-कण में। वेष-भूषा हो या कुमाऊँनी भाषा या अन्य परम्परा, सब का सफल निर्वाह यहाँ देखा जा सकता है। पहाड़ी, भोजन बाल मिठाई का स्वाद भी यहाँ ले सकते हैं आप, लेकिन इस का अर्थ यह कदापि नहीं कि यहाँ से आधुनिकता कोसों दूर है। परम्परा एवं आधुनिकता के रंगों में बराबर भीगा है यह नगर।

जलवायु देखें तो एकदम स्वास्थ्यवर्द्धक। हिमाच्छादित शिखरों से घिरा हरित वृक्षावलियों से लदा अल्मोड़ा जिस के सौन्दर्य का कहना ही क्या। उधर पर्वत शिखरों पर मन्दिरों में बजती रून-झुन घण्टावलियाँ, अध्यात्म एवं नैसर्गिकता के सामन्जस्य की पताकाएँ लहराती-सी नज़र आती हैं। सूर्योदय के समय तो इन पर जैसे कंचन बरसता है। यही नहीं स्थापत्य कला भी मोहित करने में कोई कसर नहीं रखती। पटालियों से आवृत गलियाँ और मकान बेहद खूबसूरत लगते हैं। यहाँ का लाल बाज़ार जो बहुत पुराना है, सुन्दर एवं कटावदार पहाड़ों से निर्मित है, जिस में घूम-घूम कर प्राकृतिक सौन्दर्य का रसास्वादन किया जा सकता है। कहते हैं बसन्त ऋतु में तो यहाँ की खूबसूरती में चार चाँद लग जाते हैं। लेकिन शीतल जलवायु होने के कारण सर्वाधिक सैलानी गर्मी में, सर्दी का लुफ़ उठाने यहाँ आते हैं। यँ तो बारह महीनों इन की चहलकदमी बनी ही रहती है।

हाँ, कुमायूँ के राजा कल्याण चन्द ने 1560 ई. में अल्मोड़ा की खोज की थी, इस के पश्चात, चन्द्र वंशीय राजा भीम चन्द्र के दत्तक पुत्र कुमार बाल कल्याण खसिया ने दलपति गजवा को हरा कर खागमारा में नई राजधानी बना कर उसे अल्मोड़ा नाम दिया था। इस के पहले यहाँ की

राजधानी चम्पावत थी। यहाँ अंग्रेजों की दरख्तावाजी रही है। 1814-15 ई. में गोरखा युद्ध में नेपाल से अल्मोड़ा अंग्रेजों के हाथ में आया। 1842 ई. में यहाँ अंग्रेजों ने बल्लूक टावर बनवाया। विष्णु पुराण के अनुसार कौशिकी और सालमेल नदियों के बीच काश्य पहाड़ पर विष्णु का निवास बताया गया है। जो भी हो यहाँ की आबो-हवा किसी के लिए दवा से कम नहीं है।

अल्मोड़ा में 'खगमारा' किला, दर्शनीय है, वहीं नन्दा देवी का मन्दिर तो इस की शान है ही। यहाँ की इष्ट देवी भगवती पार्वती है। नन्दा अष्टमी को यहाँ विशेष पूजन-अर्चन होता है। मेला भी लगता है, झोड़ा, चाँचरी, छपेली आदि लोकनृत्यों का सरस आयोजन भी दर्शकों को मुग्ध कर देता है। इस के अलावा रघुनाथ मन्दिर, महावीर मन्दिर, मुरली मनोहर मन्दिर, बद्री नाथ मन्दिर आदि भी विशेष उल्लेखनीय हैं। सिमतोला, कालीमठ, मोहनजोशी पार्क का भी सैलानी आनन्द उठा सकते हैं।

'ब्राइट एण्ड कॉर्नर' तो यहाँ का अद्भुत स्थल है, जितनी भी तारीफ़ की जाए कम है। सूर्योदय व सूर्यास्त के वक़्त का नज़ारा तो ग़ज़ब ढाता ही है। इंग्लैण्ड के 'ब्राइट बीच' के नाम पर ही इस का नामकरण हुआ है। वहाँ भी इस बीच पर सुबह-शाम का दृश्य चमत्कारी होता है। वाकई अल्मोड़ा बड़ी प्यारी जगह है। रवीन्द्र नाथ टैगोर, महात्मा गाँधी, जवाहर लाल नेहरू, नृत्य सम्राट उदय शंकर, स्वामी विवेकानन्द आदि महान पुरुषों का भी यह अतीव प्रिय नगर रहा है। इस के सिवा कटारगल का सूर्य मन्दिर, बिनसर महादेव मन्दिर, गणनाथ, लाख की गुफाएँ, सीतलाखेत भी विशिष्ट आकर्षण के केन्द्र हैं। लाख की गुफाओं में 'शैलशिला' की कला कृतियाँ देखते ही बनती हैं। अजन्ता की याद उन्हें देख कर बरबस ही आ जाती है। उपत, कालिका, मजखाती, अल्मोड़ा के आस-पास हैं, जहाँ की प्राकृतिक सुषमा का आनन्द लेने में कोई हरज नहीं है, यदि समय हो तो।

हाँ, स्कन्ध पुराण के मानस खण्ड के अनुसार कोसी व शाल्मली नदी के बीच जो पावन पर्वत अल्मोड़ा है, वहाँ विष्णु का निवास तो माना ही जाता है तथा विष्णु का कुर्भावतार भी इसी पहाड़ पर हुआ था, ऐसी मान्यता है। इसी के साथ यहाँ की माँ भगवती कोशिका देवी ने शुम्भ-निशुम्भ नामक राक्षसों का संहार भी इसी क्षेत्र में किया बताते हैं, जो भी हो सांस्कृतिक व साहित्यिक दृष्टि से अल्मोड़ा पूरे कुमायूँ क्षेत्र यानी कुमायुनी संस्कृति का प्रमुख केन्द्र है, इस में कोई सन्देह नहीं है। हाँ, यह नगर घोड़े की नाल के आकार के अर्द्ध चन्द्रकार पर्वत शिखर पर बसा है। इस नगर की एक और विशेषता है, प्रकृति के सुकुमार कवि सुमित्रानन्दन पन्त की जन्मस्थली यही है। प्रकृति का आत्मीय सन्सर्ग ही तो था, जिस ने पन्त को कालजयी कवि बनाया है। इस बात को स्वयं कवि ने स्वीकार किया है-

“छोड़ दुमों की छाया  
तोड़ प्रकृति से भी माया  
बाले! तेरे बाल-जाल में कैसे उलझा दूँ लोचन...।”

छायावाद के स्तम्भ कवि 'पन्त' का साहित्य-सृजन आज हिन्दी की अमूल्य निधि है। वर्यून न

हो अल्मोड़ा है ही इतना अनुपमेया 'जहाँ न पहुँचे रवि वहाँ पहुँचे कवि' यह कहावत ऐसे ही नहीं बनी है। अल्मोड़ा के पर्वतीय इलाकों में, घाटियों में चीड़ व देवदार के इतने घने वन हैं कि कितनी ही जगह रवि की किरणें धरती तक नहीं पहुँच पाती हैं। कभी हम ने यह बातें सुनी थीं, लेकिन आज साक्षात्कार कर रहे थे। धरती, मिट्टी, पत्थर तो कहीं-कहीं ही दिखाई देते थे। केवल हरियाली बस...हरियाली। जहाँ चट्टानें थीं उन पर भी सूरजों में कुछ न कुछ उगा हुआ था। यही तो है वो जड़ी-बूटियाँ, सजीवनियाँ, जिन का संस्पर्श कर के आती हुई हवा ही तन-मन में नूतन उर्जा व आनन्द का सञ्चार कर जाती है। आश्चर्य तो यह है कि इन में एक भी पत्ती अनुपयोगी नहीं होती है। एक बोध-कथा याद आ रही है जिस का सारांश इतना ही है कि गुरु अपने शिष्य की परीक्षा लेने हेतु जंगल से अनुपयोगी बूटी ले कर आने को कहते हैं। सारे जंगल की खाक छान कर शिष्य खाली हाथ लौट आता है और गुरु से बड़ी विनम्रता से कहता है कि क्षमा करें, गुरुवर मुझे तो एक भी पत्ती ऐसी नहीं मिली जो उपयोगी न हो। गुरु प्रसन्न हुए और शिष्य को आशीर्वाद दे कर भेज दिया कि तुम्हारी शिक्षा पूरी हो गई, जाओ मानव-सेवा करो। खैर इन की तो महिमा ही अपरम्पार है, यहीं विराम देते हैं। हाँ, अल्मोड़ा का 'ब्राइट एण्ड कॉर्नर' देखने की हमारी प्रबल इच्छा थी, क्योंकि इस की सुषमा के बारे में हमने काफी पढ़ रखा था, चित्र भी देखे थे, मगर पैकेज टूर की ये विवशताएँ होती हैं। जहाँ तक हो पैकेज टूर से बचना ही चाहिए, हमारा यही अनुभव रहा है। थोड़े से झंझटों से बचने के लिए ही मन मुआफ़िक कुछ न देख सकें, ये तो कोई बात नहीं हुई, भाई। हम सुविधाभोगी जो हो गए हैं, यात्रा करें और परेशानियाँ भी न झेलें, ये तो वही बात हुई कि बारिश में सड़कों पर धूलें और भीगे भी नहीं। अरे यात्रा में परेशानियाँ न आएँ तो फिर यात्रा का आनन्द ही क्या? इन में ही तो यात्रा का लुत्फ़ छिपा होता है। नए-नए अनुभव तो इन परेशानियों से ही प्राप्त होते हैं। सौन्दर्यपान तो सफ़र का एक पहलू है, दूसरा पहलू मुसीबतें ही हैं। कहा भी गया है कि सागर में गोते लगाने पर ही गौहर प्राप्त किए जा सकते हैं। वैसे हम आप से कह तो रहे हैं, मगर हम ने यहाँ एक बार गलती कर के भी दुबारा तिरुपति में दोहरा लिया, यानी कन्याकुमारी रामेश्वरम् का पैकेज टूर कर के वहाँ की टूरिस्ट एजेन्सी ने तो हमारे साथ जो धोखाधड़ी की, पूछिए ही मत, रुला, रुला दिया हमें। सच तो ये है कि इन एजेण्टों के मायावी छलावों में भोले-भाले सैलानी आ जाते हैं। पहले तो यात्रियों को मीठे-मीठे सपने दिखाते हैं, बड़े प्रलोभन देते हैं और पैसे हाथ में आ जाने के बाद बस में बिठा कर भूमिगत हो जाते हैं। दिए गए प्रलोभनों में से एक चौथाई भी सच नहीं होते, कुछ अपवादों को छोड़ कर, ये हमारा कटु अनुभव है।

## कौसानी

तो, जनाब हम बाल मिठाई व कलाकन्द का स्वाद लेते-लेते बस तक पहुँचे, कुछ देर बाद सभी सहयात्री आ गए और लगभग तीन बजे हमारी बस खाना हुई। मौसम भी सुहाना और सफ़र भी सुहाना, साथ में कोसी नदी की अठखेलियाँ और क्या चाहिए सफ़र में? ये नदी भी बड़ी नटखट निकली, कभी एकदम भूमिगत हो जाती तो कभी एकदम अवतरित हो कर चौंका देती,

लुभाने लगती। आगे चल कर पहाड़ी की सघनता कम होती गई, पठार आ गए और तापमान कुछ बढ़ने लगा। गर्मी का अहसास होने लगा। ये तो होना ही था। सर्दी तो पहाड़ों की महबानी है और ऊँचाई की। एक डेढ़ घण्टे बाद बस एक ज्यूस की दुकान पर रुकी जहाँ नितान्त एकान्त जंगल एवं खामोशी का साम्राज्य था। आश्चर्य भी हुआ इस अकेली अदद दुकान को देख कर, लेकिन पहाड़ी रास्तों में वैसे ऐसी कई तन्हा दुकानें मिल जाती हैं। यह बस मालिक के मामा श्री की दुकान थी, बस ठहरने का तो ये भी एक राज़ था जो बाद में समझ आया। दुकान में फ्रुट, ज्यूस व कुछ पहाड़ी फलों से बनी हुई कुछ वस्तुएँ थीं, जो दवा का काम भी करती थीं। हमारे सभी बंगाली बाबू तो इन चीज़ों पर टूट पड़े। हम लोग बाहर निकले और पहाड़ी हवा का सेवन कर के ही दवा का काम चला लिया। क्यों कि शुद्ध हवा से श्रेष्ठ दवा कोई होती भी नहीं। लगभग आधे घण्टे बाद हम लोग खाना हुए और पाँच बजे करीब मंजिल के दीदार हुए। 'कौसानी' जिस के दीदार करने के लिए मन कब से आतुर हो रहा था। इस के सौन्दर्य के बारे में इतना कुछ पढ़ चुके थे कि जिज्ञासा होना स्वाभाविक था ही। बस जहाँ आ कर रुकी वहीं हिमालय पीत दुशाला ओढ़े स्वागतातुर खड़ा था। शायद बर्फ के कारण उसे भी सर्दी लग रही होगी, सो शाम होते ही पीला दुशाला ओढ़ लिया होगा। सूर्यास्त तो पहाड़ों पर वैसे भी जल्दी हो जाता है, क्यों कि ऊँचे-ऊँचे पर्वत उसे अपनी आगोश में समेट लेते हैं। इधर महीना अक्टूबर का, जिस में मैदानों में भी सूर्यास्त जल्दी हो जाता है।

सूरज पहाड़ी की ओट में ज़रूर छिप चुका था, लेकिन उस की पीताभा बर्फ को रंगीन बना रही थी। ऐसा लग रहा था, मानों हिमालय पर सुनहरी बर्फ अच्छादित हो। यहाँ से हिमालय इतना करीब महसूस हो रहा था, यानी ऐसा लग रहा था कि हाथ बढ़ा कर छू लें, जब कि अभी भी यह 35 किमी. दूर था और लम्बाई में जो दिखाई दे रहा था, जरा सा लग रहा था, मगर 340 किमी. लम्बाई में विस्तार था इस का। यही है कौसानी का भव्य आकर्षण, जिस के मोहपाश में बँध कर सैलानी चुम्बक की तरह यहाँ खिंचे आते हैं। बहुत खूब, बहुत खूबसूरत है यह नज़ारा, आनन्द आ गया। इस के बाद हमें होटल में ले जाया गया। होटल क्या इसे धर्मशाला कह सकते हैं। हम लोगों के ठहरने की व्यवस्था पाँचवीं मंजिल पर की गई, चढ़ते-चढ़ते थक-से गए, क्यों कि सीढ़ियाँ एकदम खड़ी लगी हुई थीं। अब बारी-बारी से सब को कमरे एलोट किए जा रहे थे। हमारी बारी आती है, हमें दो कमरे का सैट दिया जाता है। हम सब कमरे में प्रवेश करते हैं। कमरे एकदम साधारण, छत इतनी नीची कि हाथ से छू लो। कुछ अजीब तरह की गन्ध भी आ रही थी, कहाँ से आ रही थी, पता नहीं चल पाया। 'यकीन' साहब ने पूरा मुआयना भी कर लिया, गन्ध ज़ियादा ही परेशान कर रही थी, सो, अगरबत्ती का सहारा लेना पड़ा। बाथरूम के बारे में तो कुछ कहना निरर्थक ही होगा। चादरें भी नहीं बदली गई थीं, सो हम ने कह कर चैंज करवाई। कुछ देर हम लोग रिलेक्स हो कर बैठे, तब तक चाय भी आ जाती है, चाय कैसी हो सकती है, ज़ाहिर है, फिर भी हमारे सिवा सब ने सेवन किया ही सही, क्यों कि थकान से हाल जो बुरा हो चुका था, हम से नहीं पी गई, वैसे भी हमें चाय छोड़े हुए काफ़ी वक़्त हो गया है। अब यह शाम तो हमारी अपनी थी। हम लोग कुछ फ़्रेश हुए एवं कौसानी घूमने का प्रोग्राम बनाया।

अब तक अँधेरा हो चुका है। हम कमरे से बाहर आते हैं व ताला लगा कर गाँधी बाबा का आश्रम देखने के लिए चल पड़ते हैं। हमारे साथ लखनऊ से आई चन्दा व उस के पति भी हैं। इन

दोनों से नैनीताल में बस की प्रतीक्षा के दौरान कुछ पहचान हो गई थी। हम लोग पहाड़ी रास्तों पर चढ़ते-उतरते में रोड तक पहुँचते हैं। रास्ते में परस्पर बातें व खूब हँसी-मज़ाक होता है।

होटल में पानी की व्यवस्था व टॉयलेट को ले कर चन्दा काफ़ी मज़ाक करती है। बोलती है कि मालूम चले कि अपन लोग सुबह-सुबह बाल्टी ले कर क़तार में लगे खड़े हैं। इसी प्रकार परेश होने के लिए भी क़तार में ही लगना पड़ेगा क्योंकि उन के रूम में टॉयलेट नहीं था। कुल मिला कर होटल की व्यवस्था व पैकेज टूर की सारी गोल-मोल बातों व वादों से ये दोनों काफ़ी दुखी हैं, हम लोगों की ही तरह। हर बात को ले कर हमारी ही तरह बहुत परेशान हैं। बार-बार एक ही बात कहते हैं कि कहाँ फँस गए पैकेज टूर के चक्कर में। चन्दा अपने पति पर झल्लाती है कि सब इन के ही कर्म हैं। इन को घर लौटने की जल्दी है सो पैकेज टूर में ले आए। मुझे तो स्वच्छन्द हो कर खूब घूमना था, यहाँ ठहरना था, बार-बार कौन आता है। चन्दा की बातें हमें बड़ी अच्छी लग रही थीं, क्योंकि हमारे ही मन की बातें बोल रही थी। इस मुआमले में हम दोनों के विचार एकदम एक थे। हमारी ही तरह हर बात का उसे भी काफ़ी शौक है, हर चीज़ को जी भर कर जीना चाहती है। उन दोनों की नई-नई शादी हुई है, प्रेम विवाह है, बड़ी मुश्किल से घरवालों को राज़ी कर के इन्होंने ये विवाह किया है।

चन्दा एम. एससी. की स्टूडेंट है, देखने में खूबसूरत है, गौर वर्ण, क़द ठीक-ठाक है। मेकअप करने पर तो और आकर्षक हो जाती है। उस के पति बिज़नेस में हैं, इसी लिए उन्हें घर जाने की जल्दी है, लेकिन चन्दा काफ़ी नाराज़ है, इस बात को ले कर। उन के पति महोदय को भी हैण्डसम कह सकते हैं, परन्तु चन्दा उन के मुक़ाबले अधिक खूबसूरत व स्मार्ट है। वैसे भी भारतीय समाज में नारी की सुन्दरता व पुरुष का व्यवसाय देख कर ही विवाह करने की कोशिश की जाती है। चन्दा के आकर्षण का केन्द्र उस का हैल्दी होने के साथ-साथ, उस का गोल-मटोल भरा हुआ चहरा भी है। साथ ही हास-परिहास में भी वह प्रवीण है, कहते हैं कि हास वह चुम्बकीय शक्ति है, जिस से सभी लोग स्वतः ही खिंचे चले आते हैं। इसे हम छूत की बीमारी भी कह सकते हैं। बीच-बीच में हम लोग शैरो-शाइरी भी सुना रहे थे, क्योंकि शाइर भला अपनी बातों में अपने शैर नहीं सुनाए, यह हो सकता है क्या? जब हमारे व 'यकीन' साहब के शाइर होने का पता चन्दा व उस के पति को चला तो उन्हें बड़ा आश्चर्य भी हुआ व खुशी भी। क्योंकि आज भी आम लोगों की नज़र में कवि या साहित्यकार बहुत बड़ी हस्ती मानी जाती है। उन्हें ऐसा लगता है कि कोई शाइर उन के साथ चल रहा है, इस बात से वो स्वयं को गौरवान्वित मानने लगते हैं। उन दोनों की फ़र्माइश पर हम लोगों ने कुछ शेर सुनाए।

अब तक हम पूछते-पाछते पहाड़ी पर काफ़ी ऊँचाई तक पहुँच चुके थे, लेकिन कहीं भी कोई धाम नज़र नहीं आ रहा था, जिस से भी पूछते वह यही कहता बस थोड़ा दाएं-बाएं चले जाओ आश्रम आ जाएगा। आप को यह जान कर आश्चर्य होगा कि इस रास्ते में घुप्प अँधेरा था। एक तरफ़ पहाड़ी व दूसरी ओर गहरी खाई, रास्ता वही बल खाता हुआ। ज़रा-सी भी असावधानी यहाँ दुर्घटना का सबब बन सकती है। बड़ा तरस आ रहा था प्रशासन पर। जहाँ हज़ारों सैलानी प्रतिदिन गाँधी बाबा के आश्रम में इसी रास्ते से आते-जाते हैं, वहीं घुप्प अँधेरा। वाह रे मेरे देश। खैर, अब प्रशासन को गाँधी से मतलब भी क्या है। देश तो आज़ाद हो ही चुका है। रही बात कृतज्ञता की, वो तो लोगों



के खून में ही नहीं है। स्वप्निल बार-बार अँधेरे के मारे वापस लौट आने की ज़िद करती रही, लेकिन समूह के साथ बँधे थे हम भी, उसे भी बहुत गुस्सा आ रहा था। 'यकीन' साहब की टॉर्च ही हमें रास्ता बता रही थी व गड्ढों से बचा रही थी। कुछ लौटते पर्यटकों से जानकारी लेते-लेते हम चल रहे थे। आगे सीढ़ियाँ आईं उन्हें बेहद सावधानी से चढ़ना पड़ा। काफी सीढ़ियाँ चढ़ने के बाद हम पहुँचे आश्रम तक। एक तरफ़ तो शायद कुछ लोग रह रहे थे, दूसरी ओर बड़ा-सा हॉल था, जिस में लोग प्रार्थना कर रहे थे, गाँधी बाबा की तस्वीर लगी हुई थी। यह कौसानी की सब से ऊँची चोटी है।

वहाँ से तलहटी में बसे क़स्बों, जिन में वैद्यनाथ भी शामिल है, तारों की तरह झिलमिला रहे थे, जैसे आकाश के सारे सितारे ज़मीन पर आ कर यहाँ बिखर गए हों। बहुत खूबा सदीं पूरे यौवन पर थी ही। चन्दा मेमसाहब को फोटो खींचना था, लेकिन प्रार्थना होने के कारण हिचकिचा रही थी। कुछ देर बाद प्रार्थना समाप्त हुई और लोग चले गए तब वहाँ के बाबा के साथ आश्रम का फोटो लिया तब जा कर उसे चैन आया। वाकई, बड़ी शौकीन लड़की हैं। हम ने तो बाहर बोर्ड पर लगी जानकारी जरूर नोट की। इस से ज़ाहिर है कि महात्मा गाँधी ने कौसानी की ब्यूटी पर मुग्ध हो कर बारह दिन तक इसी अनासक्ति योग आश्रम में निवास किया था तथा गीता का 'अनासक्ति योग अध्याय' की रचना भी यहीं की थी। यह बात 1929ई. की है। गाँधी जी ने ही कौसानी की तुलना स्विटज़र लैण्ड से की थी एवं 'यंग इण्डिया' में लेख के माध्यम से यहाँ के नैसर्गिक, अलौकिक सौन्दर्य को प्रतिपादित कर के देशी-विदेशी पर्यटकों का ध्यानाकर्षित किया था एवं विश्व-मानचित्र पर कौसानी का महत्व दिपदिपा उठा था। इस में कोई सन्देह भी कहाँ है कि कौसानी स्विटज़र लैण्ड से कहीं उन्नीस नहीं है। सदीं में जब यह पूरा इलाक़ा दुग्ध-धवल बर्फानी दुशाला ओढ़ लेता है, तब इस का सौन्दर्य अप्रतिम हो उठता है।

जानकारी नोट कर के हम वहीं कुछ देर टहलते रहे। छोटा-सा, सुन्दर-सा गार्डन था, जिस में बड़े-बड़े सुन्दर पुष्प खिले हुए थे। वहीं कुछ दुकानें भी चमचमा रही थीं, जिन में हस्त-शिल्प की वस्तुएँ बेची जा रही थीं। हम वापस उसी अँधेरे रास्ते से नीचे उतरे, बड़े सम्भल-सम्भल कर। स्वप्निल का हाथ हम ने थाम रखा था। कुछ नीचे आने पर रोशनी के दर्शन हुए वहीं आलीशान होटल भी दिखाई दिया। मालूम पड़ा कि दाम भी आलीशान हैं।

अब रोशनी मिल जाने से हम लोगों को काफी राहत मिल गई थी। होटल को देख कर अपने होटल की बात चल पड़ी। चन्दा कब चुप रहने वाली थी। शाम की चाय पर टिप्पणी करती हुई बोली कि चाय इतनी बेकार थी कि पी ही नहीं गई और बंगाली बाबू तो ऐसे टूट पड़े थे कि जैसे उन्हें ऐसी चाय कभी मिली ही नहीं हो। हम ने उसे टोकते हुए कहा कि इतनी थकान के बाद चाय मिली, इस लिए इतने शौक से पी रहे होंगे, जैसी मिलेगी, वैसी ही तो पिएँगे। हमें बीच में ही टोकते हुए अपनी बात जारी रखते हुए बड़े हल्के-फुल्के मूड में बोली कि सुबह सब को नहाने के लिए एक-एक गर्म पानी की बाल्टी मिलेगी, ज़ाहिर है क़तार लगेगी ही और बंगाली लोग ही सब से आगे होंगे और अपना नम्बर आते-आते तो सम्भव है, पानी ही ख़त्म हो जाए और मालूम पड़े कि लोग हमें बिना नहाए ही रहे गए। सच तो यह है कि टूरर वालों की व्यवस्था व चीटिंग से वह भी काफी परेशान थी। अल्मोड़ा में भी इन्होंने हम लोगों को एक प्वाइण्ट नहीं दिखाया था। तब भी

अपने पति से नाराज़ होते हुए बोली थी कि जब लोग पूछेंगे कि अल्मोड़ा में क्या-क्या देखा तब क्या जवाब देंगे, बताइए। उस का यह तर्क हमें भी अच्छा लगा। अल्मोड़ा जैसी सुन्दर जगह से आप खाली हाथ आ जाएं तो पीड़ा तो होगी ही। क्या हम केवल परिक्रमा करने आए हैं? ज़ियादा नहीं तो एक-दो स्थान तो दिखा ही सकते थे। भला इतनी दूर कोई बार-बार आता है? कितनी मुश्किल से योग बनता है, घर से बाहर निकलने का। हम स्वयं दो बार रिज़र्वेशन कैंसिल करवा चुके थे, लेकिन 'अब पछताए होत क्या'।

अब हम नीचे बाज़ार में आ गए हैं। एक दूकान से पानी की बोतल खरीदी वहीं एक पिंजरे में आठ-दस मुर्गियां बड़ी ठिठुरी-ठिठुरी, सिकुड़ी हुई बैठी थीं, जो बड़ी प्यारी लग रही थीं, हम इन्हें देख ही रहे थे तभी एक क्रेता आया और एक मुर्गी को खरीद कर ले गया, जब कि हम लोगों को यह मालूम नहीं था कि यह बिकाऊ भी हैं, स्वप्निल के मन में यह खयाल आ चुका था कि ज़रूर इन्हें भी बेचा जा रहा होगा, उस की सोच सही निकली। हम सोचने लगे कि एक मिनिट पहले तक इसे क्या मालूम था कि कोई उसे खरीद ले जाएगा और...। बेचारी कितने इत्मीनान से जी रही थी। हम दोनों को बड़ा दुख हो रहा था। यह आदमी नाम का जीव बड़ा भयंकर है, किसी भी मासूम प्राणी को नहीं छोड़ता। ईश्वर ने हज़ारों तरह की वस्तुएं भोजन हेतु उसे प्रकृति के द्वारा प्रदत्त की हैं मगर प्राणियों को ही...। हर जीव को ईश्वर ने उत्पन्न किया है। हर प्राणी को अपना जीवन जीने का पूरा-पूरा हक है। हर प्राणी को दुख-दर्द बराबर महसूस होता है, लेकिन यह समवेदनशीलता की बात आदमी को कहाँ महसूस होती है। जब खुद के हाथ-पैर में काँटा भी चुभता है तो कितना दर्द होता है, फिर भी वह किसी प्राणी के दर्द को महसूस नहीं कर पाता, वह रे आदमी! अपने मतलब के आगे किसी का भी सगा नहीं है। एक शेर अर्ज़ है-

*“उन को तो है मतलब से मतलब  
चाहे किसी की जान निकले।”*

आज सब से खतरनाक प्राणी है तो वह है केवल आदमी। बेचारी मुर्गियाँ। हम दोनों यह देखते रहे तब तक ये लोग कुछ आगे निकल गए। हम ने जल्दी-जल्दी इन को पकड़ा। अपने होटल पहुँचे, खाना तैयार था। वैसे हम में से भूख किसी को नहीं थी, मगर थोड़ा बहुत खा लिया। खाना सो-सो था, वहीं बन रहा था। सुबह 5:30 बजे उठना था, 'सन राइज़' देखने के लिए सो खाना खाते ही सोना पड़ा। एक तो दिन भर की थकान, ऊपर से पहाड़ी पर चढ़ने की थकान से कब नींद आ गई पता ही नहीं चला। सुबह पाँच बजे ही नींद खुली, वो तो खुलनी ही थी। ब्रश-ब्रश किया। जलपान कर के हम लोग सूर्योदय के दर्शनार्थ चल पड़े। स्वप्निल को खूब जगाया मगर वह नहीं उठी, बोली आप जाओ। बच्ची है कल काफ़ी परेशान हो चुकी थी और फिर सुबह जल्दी उठना किसी तपस्या से कम थोड़ी ही है। इस की माँ ही जल्दी उठने से कतराती है तो बिटिया क्यों न कतराए। सच कहें हम से चाहे सारी रात जागरण करवा लीजिए, मगर जल्दी उठने की मत कहिए। यह हमारे वश में नहीं है, बरसों तक देर रात पढ़ने की आदत जो रही थी। हम मानते हैं कि यह बहुत खराब आदत है, इस के कारण घर में कई बार झगड़ा भी होता है, लेकिन क्या करें यह हमारी कमज़ोरी है, जिसे हम सहर्ष स्वीकार करते हैं। अब आदत तो आदत है, वह तो बहुत ही ढीठ होती है, क्या किया जाए। दुष्यन्त कुमार का प्रसिद्ध शेर अर्ज़ है-

“एक आदत-सी बन गई है तू  
और आदत कभी नहीं जाती।”

खैर, रूम के ताला लगा कर हम तीनों हिमालय दर्शन के लिए चल पड़े। जैसे ही हम गाइड महोदय द्वारा बताए स्थान पर पहुँचे, वहाँ पहले से ही बहुत-से लोग जमा हो चुके थे। जिन की आँखों में आतुर जिज्ञासा साफ़ दिखाई दे रही थी। सूर्य भगवान के उदय होने का इतनी बेसब्री से इन्तज़ार कुछ ही स्थानों पर होता है। वरना किसे फ़ुर्सत है कि उन के आने-जाने की बात निहारे। सब वक़्त व स्थान विशेष की बातें हैं। हम ने पहाड़ी पर अपना मुक़ाम बनाया व खड़े हो गए। क्षितिज की ओर टकटकी लगा कर, लगभग सब के हाथों में कैमरे थे, लेकिन हम लोग होटल से लाना भूल गए थे। सूरज भगवान ने दर्शन देने के लिए काफ़ी प्रतीक्षा करवाई, सो इन घड़ियों को हम लोगों ने कॉफ़ी की चुस्कियों के साथ बाँटा। कुछ देर में हिमाच्छादित पहाड़ी के शिखर पर नारंगी-सी गोल-गोल आभा दिखाई देने लगी और सब की नज़रें हिमालय पर टिक गईं। ऐसा अनुमान हो रहा था मानो गोला सूर्य नहीं सूरज का प्रतिबिम्ब हो। देखते ही देखते, धीरे-धीरे शैल शिखरों को पीताभा चूमने लगी। श्वेत-धवल हिम नारंगी रंग में नहाने लगी। एकदम अद्भुत दृश्य। ऐसा लगने लगा मानो शैल-शिखरों पर नारंगी गोटा लगाया जा रहा हो। धड़ाधड़ कैमरों की फ़्लैश ऑन होने लगी। एक के बाद एक शैल, स्वर्ण जड़ित मुकुट धारण करते जा रहे थे, जिन्हें हम अपलक निहारते रहे। सारा बर्फ़ पीली चादर ओढ़ चुका था, मगर सूरज देव कहीं नज़र नहीं आ रहे थे, क्योंकि अक्टूबर होने के कारण सूर्य देव सीधे पूर्व में उदय नहीं हो कर थोड़े-थोड़े दक्षिण की तरफ़ बढ़ने लगे थे। यदि हम मई-जून में यहाँ आते तो सूर्य पहाड़ी के पीछे से प्रकट होते हुए ज़रूर दिखाई देते। सारा दृश्य सामने यूँ था कि दौड़ कर बाहों में भर लो। लगभग आधे घण्टे तक सैलानी इस अलौकिक दृश्य को देखते रहे। इस के बाद शनैः शनैः खिसकने लगे।

लो, अब सूरज दादा बग़ल वाली पहाड़ी की ओर से आकाश में प्रकट हुए, लेकिन अब तक ये काफ़ी प्रचण्ड हो चुके थे। वहीं खड़े एक सैलानी व चन्दा के श्रीमान् जी बोले कि सूर्योदय देखना हो तो दार्जिलिंग जाओ। वहाँ एकदम पहाड़ी के पीछे बड़े गोले के रूप में भास्कर-भगवान अवतरित होते हैं। वह नज़ारा देखते ही बनता है। लोग वहाँ सुबह साढ़े तीन बजे से ही जमा होने लगते हैं। आप पलक तक नहीं झपक सकते, इतना अद्भुत सूर्योदय होता है। हम ने कहा- देखते हैं, वहाँ भी जाकर कभी। वहाँ से हम वापस होटल आ गए। स्वप्निल को जगाया, फ़्रेश हुए। चाय पीने के लिए, रसोई-घर में चले गए। वहाँ रसोइए से कई बातें हम ने पूछीं, इस प्रकार उन के साथ सुन्दर वार्तालाप हुआ। वहाँ के रसोइए ने बताया कि हिमालय यहाँ से 35 किमी. दूर है। कौवे की उड़ान से। यह सुन कर हमें काफ़ी हैरत हुई। क्योंकि ऐसा लग रहा था कि ये सामने रहा। शायद उस की विशालता के कारण ऐसा लग रहा हो। उस की जगह कोई पेड़ होते तो क्या नज़र भी आते। खैर, यह भौतिकी का विषय है, हम वयूँ बहस करें। रसोइए महाराज ने यह भी बताया कि जितना हिमालय लम्बाई में नज़र आ रहा है वह 340 किमी. है। एक और बड़ा अचरज। लगता यूँ है जैसे एक-दो किलोमीटर ही लम्बा है। वाह रे दुनिया! बड़ी हैरतअंगेज़ है। कल शाम को सूर्यास्त के वक़्त इस बात पर के.पी.जी से हमारी काफ़ी बहस हुई। हुआ यूँ कि गाइड महोदय ने बताया कि सामने जो हिमालय शिखर नज़र आ रहे हैं। वो यहाँ से 340 किमी. दूर हैं, लेकिन हम मानने को तैयार नहीं कि सामने जो पर्वत-शृंखला है, वह इतनी दूर हो सकती है। आखिर थोड़ा अनुमान तो

होता ही है ना। लेकिन के.पी. जी के अनुसार यह दूरी 340 किमी. होगी ही होगी। तर्क यह कि यह विशाल पर्वत है, इस लिए पास नज़र आ रहा है। क्योंकि गाइड महोदय का तो यह रात-दिन का काम है, उन्होंने ने तो सब रट रखा है। लेकिन ग़लती भी तो हो सकती है। ख़ैर, बहस से कोई फ़ायदा नहीं, हम ने आख़िर कह ही दिया- आप जीते और हम हारे। लेकिन हुआ यूँ था कि उस ने ग़लती से लम्बाई को सामने की दूरी बता दी थी।

चलिए वापस रसोइए जी से बात करते हैं। हम ने पुनः सवाल किया कि आप तो ग्लेशियर तक जा चुके होंगे। वो बोले- मैडम, हमारा तो जन्म ही बर्फ़ में हुआ है। यहीं इतना बर्फ़ गिरता है व जमता है कि वहाँ जाने की ज़रूरत ही कहाँ है। हम तो बर्फ़ ही बर्फ़ में रहते हैं। जब हम ने रसोई में सफ़ाई की बात पूछी तो उत्तर मिला कि हमारा तो रोज़ का ही काम है, रहना भी यहीं है, अतः सफ़ाई नहीं रखेंगे तो, असर हम पर ही पड़ेगा। बातों ही बातों में उन्होंने ने हमारे लिए गर्मागर्म चाय कब बना दी मालूम ही नहीं चला। चाय अच्छी बनी थी। हाँ, हमें ये महोदय काफ़ी बुद्धिमान, मिलनसार व सीधे-सादे लगे। पहाड़ी संस्कृति में तो रँगे हुए थे ही, उम्र यही कोई चालीस के लगभग, बोली में मिठास, आदर-भाव, काम के प्रति ईमानदार, ये सब बातें आजकल कम ही मिलती हैं। पढ़ा भी है कि पहाड़ी लोग काफ़ी महनती व सरल होते हैं, जो सच है। इन से बतियाना हमें अच्छा लग रहा था। सुबह चार बजे से रात को ग्यारह बजे तक ये रसोई-घर को ही सम्भालते हैं, सब को भोजन करवाते हैं, भला इस से श्रेष्ठ काम क्या होगा। हम चाय पी कर बाहर आए और वो बनाने लगे पूडियाँ। गर्म पानी की व्यवस्था तो थी, मगर बाथरूम के स्वरूप को देख कर नहाने का मन नहीं हो रहा था। सर्व सम्मति से यह प्रस्ताव पारित हुआ कि सब हाथ-पैर धो कर वस्त्र बदल लें, यही हुआ। इस के बाद नाश्ते का वक़्त हो गया। गरम पूडियाँ व छोले, साथ ही ज़ायफ़ेदार खुशबू भी। कहते हैं ना, भोजन की खुशबू से ही अच्छे-अच्छों के मुँह में पानी आ जाता है, क्योंकि इस का भी असर हमारी भूख पर पड़ता है। यह सारी क्रियाएँ वैज्ञानिक ढंग से सम्पन्न होती हैं। यदि भोजन मन-पसन्द का नहीं हो तो तेज़ भूख भी समाप्त हो जाती है, क्योंकि, सही कह रहे हैं ना हम? बात ये है जनाब, भूख हमें नहीं थी, स्वप्निल भी नाश्ते में तली हुई चीज़ें पसन्द नहीं करती है, लेकिन भोजन की खुशबू ने हमें खाने पर मजबूर कर ही दिया। वैसे यह नाश्ता है और इस में सब को चार ही पूडियाँ मिलनी हैं। क्या करते, इच्छा तो और थी मगर...! वैसे भी यात्रा के समय जो मिले खा लेने में ही समझदारी है। क्योंकि दिन में कहाँ, कब, क्या मिले, न मिले, पता चले कि दिन भर पेट में चूहे कूदते रहे।

### बैजनाथ

हम लोग नाश्ता कर के बाहर लॉन में आए वहाँ गाइड महोदय मुस्कुरा कर हाल पूछने लगे। क्योंकि हमारी नाराज़ी उन पर ज़ाहिर थी। हम ने उन से आगे के कार्यक्रम की जानकारी ली व निवेदन किया कि आप अपनी ओर से कुछ स्थल और दिखला दें तो महरबानी होगी। वैसे भी अब तो सब-कुछ आप लोगों के हाथ में ही है। उन्होंने ने हमारे सामने नैनीताल गाड़ी मालिक से बात की, क्या बात हुई यह तो पता नहीं, मगर हुई भ्रमण सम्बन्धी ही थी, फोन रख कर वो बोले कि

उन्होंने जो निर्देश दिए हैं, वही हम दिखा सकते हैं, हम ने सोचा ठीक भी तो है, उन्हें तो मालिक की नौकरी करनी है। पर्यटक तो रोज़ ही आते रहते हैं। इस के बाद सामानों की पैकिंग कर के हम लोग लगभग 10 बजे बैजनाथ के लिए खाना हुआ। आज चन्दा ने साड़ी पहनी थी व खूब मेकअप भी किया हुआ था। आज तो वह अलग ही लग रही थी। बहुत खूबसूरत...। साड़ी में कुछ ज़ियादा ही जम रही थी। कहते भी हैं कि नारी साड़ी में ज़ियादा ही सुन्दर दिखती है। वैसे हमारा मानना कुछ अलग है, वो ये कि सुन्दरता अन्दर से फूटती है। मन निर्मल है तो काला-कलूटा शरत्स भी अच्छा लगने लगता है। ईश्वर को भी तो निर्मल-हृदय ही भाते हैं। बाबा तुलसी दास जी कह तो गए-

*“निर्मल मन जनसो मोहि पावा  
मोहि कपट छल छिद्र न भावा।”*

जहाँ तक कौशानी का सवाल है, इस के नाम का सवाल है, इतिहासानुसार यहाँ कौशिक ऋषि ने तपस्या की थी। सम्भवतया उन्हीं के नाम पर इस स्थान का नाम कौशानी पड़ा होगा और खोज तो निश्चित ही अंग्रेज़ों ने की होगी। क्यों कि उन्हें ठण्डे प्रदेश की ज़रूरत होती थी। उन्होंने सन् 1884 ई. में इस सुन्दर स्थल को खोज कर यहाँ चाय के बाग़ान लगाए थे। जिन के कुछ अंश बैजनाथ के रास्ते में हमें मिले थे। प्रकृति की अद्भुत देन कौशानी कविवर सुमित्रा नन्दन की जन्मस्थली तो है ही, यहाँ की नैसर्गिक व्यूटी ने ही, उन्हें इतना सुकोमल कवि बनाया है। आज हिन्दी साहित्य में उन का अति विशिष्ट नाम है, विशेष कर प्रकृति-प्रेमी कवि के रूप में। उन के तो रोम-रोम में, शब्द-शब्द में प्राकृतिक सौन्दर्य रचा-बसा था।

कौशानी से पत्थर फेंकने जितनी दूर पर गर्वित खड़े हिमालय की शृंखलाओं में चौखम्भा, त्रिशूल, नन्दा देवी, पंचकूली एवं नन्दा घूँघटी प्रमुख हैं, जिन की अद्भुत सुषमा देखते ही बनती है। कौसी एवं गरुड़ नदी के मध्य ढलवाँ पहाड़ियों पर स्थित है कौशानी। यह स्थल समुद्र तल से 1890 मीटर ऊँचाई पर स्थित है। यहाँ गरुड़ घाटी व सोमेश्वर का शिव मन्दिर विशिष्ट दर्शनीय है व विख्यात है। यही नहीं चीड़, देवदार, बुराश, बाज़ आदि पर्वतीय पेड़ों के घने वनों से आच्छादित है कौशानी। यहाँ सूर्यास्त व सूर्योदय के बीच हिमशिखरों के बदलते रंग अतुलनीय सौन्दर्य को उद्घाटित करते हैं। कभी-कभी तो ऐसा लगता है मानो बर्फ़ में आग लग गई हो। यहाँ ठहरने के लिए ‘कुमायूँ मण्डल विकास निगम’ का आवासगृह, अनासक्ति योग आश्रम केन्द्र एवं गाँधी जी की शिष्या सरला बहन के आश्रम बने हैं, जहाँ सैलानियों को काफ़ी सुविधाएँ मिल जाती हैं।

हाँ, तो हम बैजनाथ चल रहे हैं, घुमावदार पहाड़ी रास्तों से गुजरते हुए। हमें वहाँ तक मात्र 20 किमी. की दूरी तय करनी है। ज्यों-ज्यों आगे बढ़ते हैं, हिमनिरी और-और करीब आता जा रहा है। रास्ते में गाइड महोदय ने इशारा करते हुए बताया कि ये चाय के कुछ खेत हैं। यहाँ की चाय बड़ी स्वादिष्ट है। आते समय कुछ देर यहाँ ठहरेंगे। अब हम सीधे बैजनाथ पहुँच गए हैं। यही रास्ता आगे जा कर पिनाकेश्वर व बागेश्वर पहुँचता है, जहाँ जाने को हमारा मन मचल रहा है। क्यों कि वहाँ की सुन्दरता के बारे में हम ने काफ़ी पढ़ रखा है। लेकिन विवशता है, पैकेज टूर में यात्रा कर रहे हैं। यहाँ मन से कुछ कर नहीं सकते। छोड़िए, जो हो ही नहीं सकता उस के बारे में क्या

सोचना। हम बढ़ रहे हैं बैजनाथ के मन्दिरों की ओर जो गौमती नदी के सुन्दर तट पर हैं। हम यहाँ पहुँच कर चारों ओर के भव्य दृश्य का अवलोकन कर रहे हैं। देवात्मा हिमालय तो जैसे दो-चार हाथ दूर ही खड़ा है। चारों ओर हरीतिमा से लदी घाटी की सुन्दरता का कहना ही क्या। स्वप्निल व के.पी. जी नदी के सुरम्य तट पर बैठ जाते हैं। 'यकीन' साहब वहीं पास खड़े कैमरे में से हिमालय देख रहे हैं, फोटोग्राफर जो हैं, असर कहाँ जाएगा। हर दृश्य को कैमरे के एंगल से ही देखते हैं कि कौन-सा दृश्य किस कोने से कैमरे में खूबसूरती से कैद किया जा सकता है?

इस बीच हम मन्दिरों की ओर हो रहे हैं। एक-एक कर के सब के दर्शन करते हैं। मन्दिर तो ऐतिहासिक हैं ही। दर्शन के पश्चात हम भी नदी तट पर आते हैं और कोमल-कोमल जल का स्पर्श कर के प्रमुदित होते हैं। एकदम शीतल एवं पारदर्शी। हाथ-पैर भिगोते ही सारा तन-मन तरो-ताज़ा हो गया। थकान एकदम छू-मन्तर। ये वही गौमती नदी है, जो सारे रास्ते हमारा साथ निभा रही थी। हाँ, इस धारा का यहाँ सब से बड़ा आकर्षण है, धारा में तैरती हज़ारों मछलियाँ। वाकई, मीन-क्रीड़ाएँ देख कर आनन्द आ रहा है। इन की अठखेलियाँ व चंचलता देखते ही बनती हैं। इन का रंग साँवला है, बहुत ही प्यारी लग रही हैं ये मछलियाँ। एक के बाद एक कैमरे प्लैश हो रहे हैं। पर्यटक इन्हें दाना डाल-डाल कर आनन्द की अनुभूति कर रहे हैं। हम भी फोटो लेने के लिए कह रहे हैं, मगर के.पी. जी इन्कार कर रहे हैं। तभी पीछे मुड़ कर देखते हैं, ये क्या? एक बड़ा-सा गोल पत्थर है, जिसे हमारे सहात्री पुरुष तर्जनी से उठाने का प्रयास कर रहे हैं, मगर उठ नहीं रहा। गाइड महोदय ने रास्ते में ही बता दिया था कि वहाँ का प्रमुख आकर्षण, एक तो इठलाती हज़ारों मछलियाँ हैं व दूसरा आकर्षण है एक गोल बड़ा-सा पाषाण। इसे ग्यारह पुरुष तर्जनी से उठाएँ तो उठ जाता है, मगर एक भी महिला हाथ लगाए तो नहीं उठता है।

गाइड महोदय कह रहे हैं कि पत्थर ज़रूर उठेगा, मगर आप लोग ग्यारह नहीं हैं। एक कम है, तभी के.पी.जी भी ज़ोर आजमाने लगे। वाकई, ग्यारह तर्जनियों से पत्थर पाँच फुट तक ऊपर उठ रहा है। सुखद आश्चर्य। ईश्वर जाने इस के पीछे क्या लीला है। पुरुष से ही उठ सकता है, महिलाओं से क्यों नहीं, पता नहीं। मन में आया कि क्यों न ग्यारह महिलाओं को इकट्ठा कर के आजमाइश की जाए, इस में हरज ही क्या है? लेकिन हमारी सहात्री महिलाएँ इस के लिए तैयार नहीं हो रहीं, हम अकेले तो कुछ कर नहीं सकते।

कुछ देर हम वहीं टहलते रहे। पुनः हम सब मन्दिर गए व दर्शन किए। कहते हैं कि इन मन्दिरों को पाण्डवों ने बनवास के समय एक ही रात में बनवाया था। इन में शिव, पार्वती व गणेश तो विराजते ही हैं, इन के साथ-साथ कुबेर, ब्रह्मा, सूर्य देव, चण्डिका माँ के भी आकर्षक मन्दिर हैं। अनुमान है कि ये मन्दिर 11वीं से 13वीं शताब्दी के मध्य बने हैं। यहाँ मूर्ति-कला व स्थापत्य-कला देखते ही बनती है। इतिहास व पुरातत्व के लिए अनमोल निधि हैं ये मन्दिर। बैजनाथ की प्रसिद्धि पूरे भारत में है। यहाँ पर आनन्द प्रदायिनी, गौमती नदी धनुषाकार में प्रवाहित हो रही है। यह स्थल 1125 मीटर ऊँचा है एवं गरुड़ उपत्यका में आता है।

बैजनाथ में भारत का एकमात्र पार्वती मन्दिर है। मूर्ति 6 फीट ऊँची है व संगमरमर से निर्मित है। यहाँ के मन्दिरों की संख्या 9 है। इन्हें केन्युरी राजाओं ने बनाया है। इन मन्दिरों से एक और

किंवदन्ती जुड़ी हुई है। ऐसी मान्यता है कि गौमती व गरुड़ गंगा के पावन संगम पर ही भगवान शंकर ने हिमालय पुत्री पार्वती से विवाह स्वाया था। कालान्तर में उन के पुत्र कार्तिकेय ने गरुड़ घाटी के बैजनाथ स्थल पर राज्य किया और इस प्रकार कार्तिकेय से केत्युनी राजवंश की स्थापना हुई। यहाँ पर पुरातात्विक वस्तुओं का संग्रहालय भी बना हुआ है, जो हमें नहीं दिखाया गया। इस प्रकार रंग-बिरंगी चट्टानों से दिपदिपाते सौन्दर्य, विशाल पर्वतमालाओं के भव्य विस्तार व पुण्य सरिता गौमती से विदा हो कर हम वापस कौसानी की ओर मुड़े। हमारी बस वहीं निकट गौमती पर बने सुन्दर सेतु पर खड़ी थी। वहाँ से खाना हो कर बस कुछ देर चाय के बाग़ान में ठहरी, यहाँ पर चाय के थोड़े बहुत ही खेत थे। हम ऊटी में इतने विशाल बाग़ान देख चुके हैं, सो हमें यहाँ कोई विशेष आकर्षण नज़र नहीं आ रहा था। कौसानी पहुँच कर हम ने ड्राइवर साहब से निवेदन कर के कुछ देर बस रुकवाई एवं 'यकीन' जी के साथ सुमित्रानन्दन पन्त संग्रहालय देखने गए। यहाँ उन के जीवन-चरित्र व साहित्यिक योगदान का पर्याप्त विवरण दर्शाया गया है। सरसरी नज़र ही डाल पाए। वहीं बाहर आ कर हिमाच्छादित हिमालय की सुबह की धूप में 'यकीन' साहब ने हमारी तस्वीर खींची। धूप में बड़ा ही स्वर्णिम लग रहा था सम्पूर्ण। वहाँ से हम लोग नीचे उतरे। जगह-जगह दुकानों में दीपावली की सामग्रियाँ सजी हुई थीं। उन्हें देख कर हमें भी घर की चिन्ता सताने लगी। क्योंकि अब दीपावली आने में मात्र एक सप्ताह शेष रह गया था। लेकिन हम ने मन को तसल्ली दी कि ये सब तो रूटीन के काम हैं, दुनियादारी तो हमेशा ही चलती रही है। घूमने के अवसर तो यदा-कदा किस्मत से ही मिलते हैं।

## रानी खेत

अब हम रानीखेत जा रहे हैं। रास्ते में पहाड़ व हरियाली काफ़ी कम हो गई है। यहाँ पर ज़ियादातर खेत हैं, वो ही सीढ़ीनुमा। गाइड जी ने बताया कि यहाँ आलू की खेती खूब होती है। कई जगह किसान हल चला रहे थे। हमारी अल्पबुद्धि के अनुसार यहाँ पर्वतों को नहीं तो कम से कम पेड़ों को काट-काट कर खेत बना लिए गए हैं ताकि यहाँ के निवासियों की ज़रूरतें पूरी हो सकें। जहाँ आदमी होगा वहाँ गन्दगी भी होगी व प्रदूषण भी। थोड़ा आगे चले तो गहरी घाटियाँ व ऊँची पर्वत शृंखलाएँ मिलीं। नैसर्गिक सौन्दर्य का पान कर के हृदय को सुकून मिला। अब पठार लगभग समाप्त हो गए थे। वही सघन वन, चीड़, खर के वृक्ष, इठलाती-बलखाती सड़कें। इन से गुज़रते हुए हम पहुँचे रानीखेत और हमारी बस ठहरी एक पहाड़ी मन्दिर के निकट। वहाँ सब यात्री बस से उतर कर इधर-उधर होने लगे। आज हम सुबह से देख रहे थे कि चन्दा हम से कुछ ज़ियादा बातें नहीं कर रही है। वह एक बंगाली अंकल-आँटी से ही दोस्ती कर रही है। बस से उतर कर पहले तो हम लोग कुछ फ़ेश हुए। हाँ, चन्दा आज भी बहुत गुरसे में थी, अपने पति से। क्यों कि उस के पति महाशय उन्ही बंगाली अंकल के साथ एक शॉप पर सिगरेट पी रहे थे। कुल मिला कर वो इस दुआर से परेशान थी, बिल्कुल हमारी तरह और इस के लिए उस की नज़र में दोषी उस के पति ही थे। सब से पहले हम सब ने कॉफी पी, क्यों कि कौसानी में नहीं पी पाए थे। चन्दा के पति महोदय ने भी उस से कुछ पीने का आग्रह किया तो झल्ला कर बोली आप ने तो सिगरेट पी

ही ली, फिर आप को मुझ से क्या मतलब है। जो पीना है आप ही पी लीजिए। लेकिन वो चुप रहे, क्यों कि उन्हें ज्ञात था कि चन्दा का गुरसा जायज़ है। चढ़ाई चढ़ कर मन्दिर तक पहुँचे। 'यकीन' साहब रास्ते में ही ठहर गए क्यों कि वो कर्मकाण्ड व पूजा-पाठ में 'यकीन' नहीं रखते, केवल एक ईश्वर में विश्वास रखते हैं। मन्दिर में बड़ी शान्ति थी, अच्छा था। दीवारों पर माँ दुर्गा के श्लोक खुदे हुए थे, जैसे कि बनारस में तुलसीमानस मन्दिर में संगमरमर में राम चरित मानस के आठ खण्ड के दोहे उत्कीर्ण हैं। पिछले वर्ष ही एक कार्यक्रम के दौरान भ्रमण का अवसर मिला था, तब इस मन्दिर के दर्शन का सौभाग्य प्राप्त हुआ था। यही इन दोनों मन्दिरों की विशेषता है। यहाँ से हमारा कारवाँ गोल्फ मैदान में रुका, जो दुनिया में समुद्र तल से ऊँचाई के आधार पर सब से ऊँचा गोल्फ मैदान है। मैदान काफ़ी लम्बा-चौड़ा था। दृश्य तो... आहा...कहने ही क्या? चीड़ की लम्बी-लम्बी वृक्षावलिओं से घिरा हुआ। सुखद, शीतल, सुहावनी हवा चल रही थी। हम लोग पैदल-पैदल इधर-उधर घूमने लगे। प्रकृति के रस का आस्वादन किया, बहुत आनन्द आ रहा था, कुछ रनेप लिए। गाइड महोदय ने मैदान के वर्जित क्षेत्र में नहीं जाने को निर्देशित किया था, मगर वही मानव-प्रवृत्ति कि जिस के लिए मना करो वह काम तो ज़रूर करना ही करना है। हमारे सहयात्री तो ज़रूर उधर गए लेकिन हम ने शिष्ट नागरिकों के कर्तव्य का पालन किया, हम वर्जित क्षेत्र से दूर ही रहे। यहाँ का सौन्दर्य लाजवाब निकला।

हम बाज़ार में पहुँचे। अब लंच टाइम हो चुका है, ब्रेक दिया गया भोजन करने के लिए। सारे यात्री अपने-अपनों के साथ इधर-उधर रेस्त्राँ तलाश करने लगे। हम ने सोचा चन्दा के साथ ही भोजन करेंगे। लेकिन वह तो अंकल-आण्टी के साथ हो ली। उसे नए मित्र मिल गए थे। हम चारों एक होटल पहुँचे, गाइड महोदय द्वारा निर्देशित जगह पर। खाना अच्छा मिला, साफ़-सफ़ाई का ध्यान भी पूरा रखा हुआ था। हाँ, बस वाले का यहाँ भी कमीशन सुनिश्चित रहा होगा। वहीं थोड़ी दूर पर चन्दा भी अपने नए मित्रों के साथ बड़ी प्रफुल्लता से भोजन कर रही थी। यहाँ से निवृत्त हो कर हम लोग नीचे आए, वहीं हम ने चन्दा से कहा कि हम लोग बस को यहीं छोड़ कर रानीखेत व अल्मोड़ा देख कर नैनीताल लौट चलेंगे। उस के पति तो मान भी गए मगर चन्दा ने मना कर दिया, गुरसे ही गुरसे में। हम लोग अब अलग-अलग रास्तों से बाज़ार को हो लिए। हम ने कई टैक्सी वालों से रानीखेत घूमने के बारे में बात की, लेकिन एक दो प्वाँइण्ट के 700-800 रुपए से कम लेने को कोई तैयार नहीं हुआ। हमेशा की तरह हम निर्णय नहीं कर पाए और वापस बस तक आ गए। एक-दो सहयात्री मार्केट गए हुए थे, जो नियत समय तक नहीं लौटे। सब को एक घण्टे तक प्रतीक्षा करनी पड़ी। बाद में मालूम पड़ा कि वो रास्ता ही भूल गए थे। बड़ी मुश्किल से पूछते-पाछते बस तक आए थे। नई जगह पर यह सम्भावना रहती ही है। हम भी ऊटी में होटल का रास्ता भूल चुके थे। कितनी मशक्कत के बाद हमें होटल मिला था। अब लगभग साढ़े चार बज चुके थे। बस में सब सवार हुए, चन्दा अपनी बंगाली मित्र आण्टी को लिए कुछ उपहार खरीद कर लाई थी, जिसे बस में दे रही थी। परस्पर पत्तों का आदान-प्रदान भी हो रहा था।

हाँ, तो हम खाना होने से पहले एक नज़र रानीखेत के भौगोलिक एवं ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य पर डाल ही लें। रानीखेत जैसा कि नाम से ज़ाहिर है, यह रानी एवं खेत दो शब्दों से मिल कर बना है। यानी इस का सम्बन्ध रानी से होना ही चाहिए। जी, हाँ, चन्द्र वंश की रानी पद्मिनी को यह क्षेत्र यानी रानीखेत बहुत पसन्द आया और उन्होंने ने यहीं पर अपनी छावनी बना डाली। यह



बात सन् 1869 ई. की है। रानी का खेत हो गया- 'रानीखेत'।

जहाँ तक इस की खोज का सवाल है, वो तो अंग्रेज़ ही कर सकते हैं, इस में कोई सन्देह ही नहीं हो सकता। भला ठण्डे देश के निवासियों को गर्म जलवायु कैसे रास आ सकती थी। सो, वे लोग हरदम ठण्डे प्रदेशों की तलाश में रहा करते थे। सारे पहाड़ी इलाकों को खोजने, वहाँ शहर बसाने एवं वहाँ का पर्याप्त विकास करने का श्रेय अंग्रेज़ लोगों को ही जाता है। भारत को उन का गुलाम रहने का यह एक फ़ायदा ज़रूर मिला है। सच बात कहने में व मानने में हरज भी क्या है? वाइसराय लार्ड मेयो ने रानीखेत में सेना का ग्रीष्मावास लाने का प्रयास तो किया, लेकिन सफल नहीं हो सका। लेकिन 1869 ई. में यह अंग्रेज़ी सेना का ग्रीष्मावास बना जो बाद में कुमायूँ रेज़ीडेंसी का कार्यालय बनाया गया। अंग्रेज़ यहाँ पिकनिक मनाने लगे, गोल्फ़ खेलने लगे व भ्रमण के कई रास्ते भी उन्होंने ने यहाँ बनाए। साथ ही इसे बसाने व विकास करने में प्रमुख भूमिका निभाई।

भौगोलिक दृष्टि से देखें तो यह क्षेत्र समुद्र तल से 1829 मीटर ऊँचाई पर है एवं 21.76 वर्ग किमी. तक विस्तार है। यहाँ के नैसर्गिक सौन्दर्य के तो कहने ही क्या। कौसानी की ही तरह यहाँ से भी हिमाच्छादित हिमालय की सुन्दरता का पान किया जा सकता है। त्रिशूल, नन्दाकोट, गौरी पर्वत, नीलकान्त, हाथी-पर्वत आदि शिखरों का विहंगालोकन का लुत्फ़ भी लिया जा सकता है। साइप्रस, चीड़, ओक बाज़ आदि पहाड़ी पेड़ तो यहाँ प्रहरी की तरह अपनी ड्यूटी पर तैनात हैं ही, वहीं खग-वृन्द भी अपना मधुर कलरव विभिन्न रागों में सैलानियों को सुनाने को तत्पर रहते हैं। घने जंगलों में जंगली पशुओं का सिंहनाद सुन कर भयभीत भी हुआ जा सकता है।

एकदम 'नीट एण्ड क्लीन' रानीखेत के माल रोड पर टहलने का तो अलग ही आनन्द है। हम ने कहा ना कि सभी हिल स्टेशनों पर हमें माल रोड ज़रूर मिले हैं। फ़ुर्सत से आने पर यहाँ कई मन्दिरों के दर्शन का लाभ सैलानी उठा सकते हैं, साथ ही चौबटिया (सेबों व फलों का बाग़ एवं शोध संस्थान) जो रानीखेत से मात्र 10 किमी. दूर है, ज़रूर जाना चाहिए। 13 किमी. दूर भालू बाँध भी देखा जाए तो अच्छा है। इसी के साथ ताड़ीखेत, द्वाराहाट, मनीला, गणार्ड, चौखुटिया, पालीपछाऊँ का अपना-अलग सौन्दर्य एवं महत्व है। दूनागिरि यानी द्रोणागिरि रानीखेत से 52 किमी. दूर एक विशाल स्थल है, यहाँ से हिमालय-दर्शन तो होते ही हैं, प्राचीन दुर्गा-मन्दिर भी दर्शनीय है। इस के नाम से पौराणिक महत्व की गन्ध भी आ रही है। किंवदन्ती है कि जब हनुमान जी द्रोणाचल पर्वत से संजीवनी बूटी ले कर जा रहे थे, तब उस में से एक पत्थर यहाँ पर गिर जाता है। जिस से द्रोणागिरि पर्वत बना है। पूरी सच्चाई तो ईश्वर ही जाने। नाम साम्य होने का कारण सम्भव है यही रहा हो। पहाड़ी स्थल है, सो, सौन्दर्य तो है ही।

## नैनीताल के लिए वापसी

चलिए, चलते हैं अब वापस नैनीताल की ओर। बस खाना होती है। यह क्या! यह रास्ता तो

और भी खूबसूरत निकला। बस, ये मानिए कि देखते-देखते आँखें नहीं थक रही हैं। वाकई प्रकृति माँ का तो जवाब है ही नहीं, हो भी कैसे सकता है, सारी सृष्टि की जननी है और जननी तो लाजवाब ही होती है, ये हैं तभी तो हम हैं। कितने प्यार से सहलाती है, दुलराती है हमें। इस की गोद में रहने का आनन्द तो अलौकिक है ही देखिए...देखिए...पथ की सहभागिनी धारा की अठखेलियाँ बिल्कुल बच्चों-सी किलकारियाँ भर रही हैं, दूसरी तरफ़ देखने तक नहीं देती। मानो, कह रही हो कि आओ मेरे पास, खेलो मेरे साथ, छुओ मुझे... फिर देखो, तुम्हारे भीतर कितना मधुरिम अहसास हिलोरें लेता है... तुम्हारे रोम-रोम में दिव्य आनन्द छलकने लगता है... तुम्हारी इस अनुपमेय खुशी में, मैं हूँ तुम्हारे साथ। तुम से तुम्हारे भौतिक सुखों का आस्वादन नहीं भुला दूँ तो मेरा नाम बदल देना...। कुछ आगे चलते हैं, शीतल जल का चलना, दौड़ना, भागना-कूदना, गाना-इठलाना... कितना सुखद हो सकता है। यह केवल महसूस करने का ही विषय है, सुनने या पढ़ने का नहीं। आहा...सुरभिल वायु का कोमल पारदर्शी संस्पर्श...सेवन...पहाड़ी झरनों का नीचे उतरना, वो भी घनघोर गर्जना के साथ...एक से एक मनभावन दृश्य...इस सौन्दर्य का रसपान कर के भला कौन मुग्ध होकर बेसुध नहीं होगा। सच ही कहा गया है कि देवता भी इस देव-भूमि पर रहने को तरसते हैं। बिल्कुल तरसते होंगे... भला स्वर्ग में यह प्राकृतिक आनन्द, सुषमा कहाँ है। इसी लिए देवता मानव योनि के लिए तरसते हैं और अवसर मिलते ही इस पुण्य भूमि पर आने का अवसर नहीं छोड़ते। ये तो मनुष्य ही है जो स्वच्छन्द हो कर, जी भर-भर कर इस वैभव को भोग सकता है। इसी लिए मानव जीवन को सर्वाधिक दुर्लभ बताया गया है। ये बात कितनी दुःखद है कि आज ये ही मानव इस वात्सल्यमयी प्रकृति का सब से बड़ा दुश्मन बन गया है। वाह रे! मूढमति... कहते हैं ना- 'विनाश काले विपरीत बुद्धि।'

हाँ, तो हम कह रहे हैं कि कितने खुशनसीब हैं ये लोग जो इन वादियों में रहने का नसीब लिखवा कर लाए हैं। अपने जीवनयापन के लिए हल जोत रहे हैं, कुछ गुड़ाई कर रहे हैं। अपने सीमित साधनों में कितने सन्तुष्ट दिखाई दे रहे हैं। इन के चहरों पर छाई लालिमा देखते ही बनती है। रास्ते में यही सब देखने को मिल रहा है। इन से बहुत ईर्ष्या हो रही है।

हम इन्हीं विचारों में खोए हुए थे कि गाइड महोदय खेतों की ओर इशारा करते हुए बोले कि यहाँ आलू की खेती बहुत होती है। आलम ये है कि ज़रा-सी पठारनुमा जगह मिली कि खेती करने लग जाते हैं, लोग। कुछ आगे चलते हैं कि फिर घनी हरियाली सामने है। पर्वत-शिखरों पर एक-सी ऊँचाई के पेड़, वो भी लगातार कतार की तरह, इन्हें देख कर तरह-तरह की कल्पनाएँ मन में नृत्य करने लगीं, जैसे पैरों की झाँझर या सर का मुकुट या दुआओं के लिए आस्मान की ओर उठते हुए हज़ारों हाथ, कभी-कभी साड़ी के बोर्डर का आभास भी होता रहा। पहाड़ों पर कई सुरई के पेड़ भी मिले, जिन्हें हम देवदार ही समझ रहे थे, बाद में मालूम पड़ा कि ये देवदार जैसे लगते हैं, मगर सुरई के पेड़ हैं।

चलते-चलते अचानक बस रुकी। गाइड महोदय बोले यहाँ नैनीताल का प्रसिद्ध मन्दिर 'कैची टेम्पल' है। यहाँ आप लोगों को आधा घण्टा मिलेगा, जाइए, दर्शन कर आइए। बस से उतरे, चारों ओर नज़रें घुमाई तो देखते ही रह गए। बेहद मनोरम दृश्यावली, एकदम अलौकिक सौन्दर्य। विशाल पर्वतमालाएँ, कल-कल निनादित झरने, घनी हरियाली। दो-चार मिनिट तो हम अपलक

चहुँ ओर निहारते रहे, फिर मन्दिर की ओर चले। सड़क एवं मन्दिर के बीच पतली-सी निर्मल धारा बह रही थी, जिस पर छोटा-सा पुल बना था। पानी इतना निर्मल था कि उतरो और पी लो, लेकिन उतरने का कोई रास्ता नहीं था। पुल पार कर के मन्दिर में दर्शन किए। बहुत ही सुन्दर प्रतिमाएँ एवं उन का शृंगार भी उतना ही आकर्षक, पास ही नल लगे हुए थे। हम सबने पानी का पान किया। बाद में हम लोग वहीं पास में बने रेस्टोरेंट गए और खुले स्थान में बैठ गए। कई विदेशी पर्यटक भी वहाँ चाय-नाश्ता करते दिखाई दिए। के.पी.जी. एवं स्वप्निल तो रेस्त्राँ में चले गए, हम गाइड महोदय से वहीं बैठ कर कुछ जानकारीयाँ नोट करने लगे। हम ने पूछा कि इस टेम्पल को 'कैंची टेम्पल' क्यों कहते हैं? तो वो मुस्कुरा कर बोले कि यहाँ पहाड़ी पर जो सड़क बनी हुई है उस में कैंची जैसा बैण्ड है, सड़क दिखाते हुए बताया। इसी के साथ हम ने अन्य कई बातें भी नोट कीं, जैसे यहाँ नीम कटोरी बाबा का आश्रम भी है, जिस में 15 जून को भण्डारा होता है, बहुत बड़ा समारोह मनाया जाता है। कहते हैं कि बाबा के भक्तों का विशाल रैला यहाँ एकत्र होता है। जून के अलावा नवरात्रा में भी उत्सव होते हैं, पूजन-अर्चन होता है। नीम कटोरी बाबा बहुत बड़े सिद्ध पुरुष थे। इन पर हनुमान जी की बड़ी कृपा थी, यानी हनुमान सिद्ध थे। इसी कारण वे जहाँ भी जाते थे, वहाँ हनुमान जी का मन्दिर ज़रूर बनवाते थे। हनुमान जी की कृपा से ही उन्हें विपुल यश प्राप्त हुआ। यह आश्रम दीन-दुखियों की शरण-स्थली भी है। गाइड महोदय ने जाते समय 'गरम पानी' पर बस रोकने का भी वादा किया, सो हम ने उन्हें यह बात भी याद दिलाई तो हिचकिचाते हुए बोले, मालिक ने इन्कार कर दिया, मैडम अब हम उन की बात को तो टाल नहीं सकते, हम तो उन्हीं का नमक खाते हैं ना।

हम ने पूछा वहाँ पर क्या विशेष है, बता ही दीजिए! तो बोले यह छोटा-सा नगर है, यहाँ से कुछ आगे, वहाँ का पहाड़ी भोजन प्रसिद्ध है। पर्यटक चाय एवं भोजन के लिए वहाँ रुकते हैं। वहाँ की पहाड़ी सब्जियाँ बाहर भी भेजी जाती हैं। बाहर से मतलब विदेश से नहीं है, देश में ही। हम ने कहा, हाँ...हाँ समझ गए भई, समझ गए, आप का मतलब हम। इस के थोड़ा आगे खेरना आता है, जहाँ कोसी नदी पर झूलता हुआ पुल है। यहाँ मछलियों का खूब शिकार होता है। वहीं से कुछ आगे एक रास्ता रानीखेत को जाता है, दूसरा अल्मोड़ा को। हमें तुरन्त याद आ गया, क्यों कि जाते वक़्त वह पुल भी हम ने देखा था और रास्ते भी। एक ओर हम मुड़े थे, दूसरे रास्ते पर रानीखेत का नाम लिखा था, 'ऐरो' के साथ। उन्हीं ने यह भी बताया कि रामनगर से खेरना नदी कोसी नदी में एकमेक हो जाती है और अल्मोड़ा से कुछ आगे बाईं तरफ से कोसी नदी बहती है। इतना कह कर वो उठ कर बस की ओर हो लिए। हमने शुक्रिया अदा किया। लीजिए स्वप्निल चाय ले आई है। इन तीनों की चाय स्टील के गिलास में है, सो जल्दी ठण्डी हो गई और ये पी गए। हमारी थर्मोकॉल के गिलास में होने के कारण ठण्डी होने का नाम ही नहीं ले रही है। उधर बस ने हॉर्न दे दिया। जल्दी-जल्दी पीने के प्रयास में जुबान जल गई, सो अलग। इतने कोल्ड मौसम में भी चाय का ठण्डा नहीं होना हमारे लिए आफ़त बनता जा रहा है। हम एक बार फिर चारों ओर विहंगम दृष्टि डाल कर सारे सौन्दर्य को नेत्रों में समेट लेने का प्रयास करते हुए, चाय ले कर बस तक चले आए। अभी जब यह प्रसंग लिख रहे हैं, वही सारा दृश्य मानस-पटल पर मूर्त हो रहा है। ऐसा लग रहा है, मानों अभी हम वहीं यह सब कर रहे हैं। यानी, वहीं विचरण कर रहे हैं। सब कुछ आँखों में साकार हो रहा है और बड़ी याद आ रही है वो हसीन घडियाँ, वहाँ भी हमारी यही स्थिति

थी कि काश! हमारा घर वहीं होता। चलिए, वापस यथार्थ के धरातल पर उतरते हैं। हम ड्राइवर महोदय से कह रहे हैं कि प्लीज़, एक मिनिट, चाय पी लें, उन्होंने ने ओ.के. कहा, लेकिन खिड़कियों में हमारे सहयात्री हम पर चिल्ला रहे हैं, कि चाय के लिए हम सब को देर कर रहे हो। लड़कियाँ हमें घूर कर बोलीं कि डिस्पोज़ेबल में तो चाय ले रखी है, कब ठण्डी होगी? लेकिन हम ने इन की बातों पर ध्यान नहीं दिया, मगर हम समझ गए कि अब इन सब को जल्दी हो रही है, सो हम चाय ले कर ही बस पर चढ़ गए। ये बात अलग है कि पीने में बड़ी मुश्किल आई, एक तो घुमावदार रास्ता, ऊपर से चढ़ाई-उतराई। जब मोड़ आता, बस स्टो होती और हम चाय की एक चुस्की मार लिया करते।

अब शाम भी गहराने लगी थी। बादल पहाड़ियों पर उतरने लगे थे, मानो, दिन भर की थकान से चूर अपने घरों को लौट रहे हों। सच भी है, यही तो इन के घर हैं, पहाड़ी की गोद, घाटियाँ, यहीं तो आराम फ़र्माते रहते हैं, जनाबा मैदान में तो इन्हें ऐसा स्थान मिल पाता नहीं। इस लिए यहीं अपना घर बनाते हैं। मौसम खराब होने के पूरे-पूरे आसार बन रहे थे। हाँ, वातावरण के सुहानेपन के लिए तो कुछ पूछिए ही मत, लेकिन यह सब हमें अच्छा नहीं लग रहा था। पूछिए क्यों? इस लिए कि मसूरी एवं कोडाईकेनाल में इन्हीं बादलों की शराब के मारे हम वहाँ के सौन्दर्य-पान से वञ्चित रह गए थे। खाली हाथ लौटना पड़ा था। इन्हीं बादलों ने नीचे उतर कर सारे स्थान को अपनी आगोश में भर लिया था। लो! इसी कशमकश में कब नैनीताल भी आ गया पता ही नहीं चला। लगभग छह बजे थे। चन्दा से व बंगाली दम्पती से विदा ली। चन्दा से अपेक्षानुसार रेस्पॉन्स नहीं मिला, अस्तु।

सामान उतार कर हम खड़े हुए, तभी 'यकीन' साहब ने ऑफ़िस में जा कर बस के मालिक से इतना ज़रूर कहा कि हम आप के टुअर से बिल्कुल भी खुश नहीं हैं, क्या कहता झेंप कर चुप हो गया। उस के लिए पर्यटकों को बेवकूफ़ बनाना, पैसा ऐंठना, रोज़ का ही काम है। उसे फ़र्क पड़ेगा भी क्यों? उसी ने जाते समय कहा था कि हमारे टुअर से लौट कर आप हमें खुश हो कर धन्यवाद देंगे। उसी का जवाब दिया था 'यकीन' साहब ने।

हुआ यूँ कि हम टुअर पर जाते समय पानी की बोतल यहीं भूल गए थे। यानी बस एजेन्सी के ऑफ़िस में। सो, उसे लेने जाना था, शिकायत भी कर दी लगे हाथों। विदा होते समय गाइड महोदय से उन का नाम भी पूछा, मदद हेतु धन्यवाद भी दिया। उधर बंगाली बाबू कह रहे थे कि दार्जिलिंग के आगे नैनीताल तो कुछ भी नहीं है। वहाँ तो ऐसा लगता है मानो पर्वतमालाओं पर हीरे जड़े हों, कभी आइएगा, हम ने आश्वासन दिया और सामान उठाने लगे तो चारों ओर होटलों के एजेण्ट इकट्ठा हो गए। सब अपनी-अपनी बोलते जा रहे थे, कोई हम लोगों की सुन ही नहीं रहा था। एक एजेण्ट तो सामान उठा कर बरबस ही हमें अपने 'पर्यटक' नामक होटल की तरफ़ ले ही चला। रास्ते में हम ने 'लेक व्यू होटल' में भी पूछा, मगर वो भर चुका था। पहाड़ी पर चढ़ते-चढ़ते हम थक गए, मगर 'पर्यटक' कहीं नज़र नहीं आ रहा था। थोड़ा और...थोड़ा और...बर्दाश्त नहीं हो पा रहा था। वो बार-बार यही कहे जा रहा था कि होटल नया है, कम्बल नए हैं यानी, हर वस्तु नई है, इसी लोभ में हम भी चले जा रहे थे, मगर के.पी.जी. ने इन्कार कर दिया और कुछ नीचे उतर कर 'गौरी होटल' देखा 300 रुपए में, जो अधिक लगे। वहीं पास के एक होटल में 250 रुपए में

रूम ले लिया। ठीक-ठाक कमरा, सब ने हाथ मुँह धोए, गरम पानी बाल्टी से ही मिला। बाथरूम में टाइल्स होने के कारण स्वप्निल फिसल गई, वो तो खुदा का शुक्र है कि कहीं लगी-वगी नहीं। हम तो सीधे पलंग पर आ कर लेट गए, कुछ देर में ये तीनों नीचे बाज़ार जा कर खाना खा आए। रात भर खूब सनन-सनन सन...हवा चलती रही। यही डर रहा कि कहीं मौसम ऊटी जैसा न हो जाए। खैर, यहाँ प्रकृति माँ महरबान रही। सुबह चटख धूप खिली हुई मिली। चाय-नाश्ता कर के मिस्टर के.पी.जी. गौरी होटल में कमरा बुक करवा आए। 10 बजे हम लोगों ने शिफ्ट किया। रूम एकदम परफेक्ट। वेल फर्निशड, कालीन। यही रूम सीज़न में कम से कम एक हज़ार से कम नहीं मिलता। हमारे पास नैनीताल घूमने के लिए अभी दो दिन थे।

## नैनी झील

बस, हम तैयार हो कर पैदल ही टहलने निकल पड़े। माल रोड में टहलते-टहलते नैनी झील में नौकायन के लिए उतर गए और झील में नौका-विहार का खूब लुत्फ़ उठाया। यहाँ से नैनीताल का नज़ारा कुछ अलग ही महसूस हुआ, कारण यह था कि कोई भी दृश्य विभिन्न कोणों से अलग-अलग दिखाई देता है। चारों ओर गगन चुम्बी पहाड़ियाँ, बीच में झील, जैसे पानी का कटोरा भरा हो। एक-दो स्नेप भी लिए। बातों ही बातों में झील के पानी की बात चली। पानी इतना स्वच्छ नहीं था। हरियाली की प्रति छाया से ब्रीनिश ज़रूर लग रहा था। इसी सन्दर्भ में खिवैया से हम ने कुछ सवाल किए तो उन्होंने ने फ़र्माया कि नैनीताल के सारे नालों का पानी इसी झील में मिलता है, जो स्वाभाविक है। क्यों कि झील तो गहराई में है ही। ज़ाहिर है पहाड़ी का पानी नीचे उतरेगा ही उतरेगा। यह तो उस का स्वभाव ही है, जैसा कि कवि बिहारी ने फ़र्माया है-

“नर की अरु नल नीर की, गति एकै कर जोय

जेतौ नीचै है चले, तेतौ ऊँचौ होय।”

पीने के पानी के प्रसंग में पूछने पर उन्होंने ने कहा कि पेयजल भी इसी झील से सप्लाई होता है, हम ने कहा कि फिर यह खाली नहीं होती, तो बोले कि बारिश में लबालब भर जाती है, वही पानी काम आ जाता है और फिर नाले भी इसी में मिलते हैं। सभी नदियों की यही राम कहानी है- गंगा भी भला कहाँ बच पाई है प्रदूषण से। यह आदमी नाम का जीव भला कब किसी की मानता है, जब तक कि पानी सर से नहीं गुज़र जाए। इस ने प्रकृति को मटियामेट करने की मानो सौगन्ध ही ले ली है। पानी पर तफ़रीह कर के एक घण्टे में हम नैना देवी के मन्दिर पहुँचे। नाव वाले को पैसे दे कर धन्यवाद दिया और माता जी के दर्शन किए। मन्दिर के बाहर ढेरों दुकानें लगी हुई थीं ही। कुछ देर यहाँ भी विचरण किया, यहाँ काफ़ी भीड़ नज़र आ रही थी। एकदम रैला आ रहा हो जैसे, चारों ओर बच्चे ही बच्चे...हम ने सोचा आए होंगे। हम वापस झील के किनारे मन्दिर के पास बेंच पर आ बैठे और सुकून से तमाम गतिविधियों एवं हलचलों का अवलोकन करने लगे। लेकिन मौसम की लुकाछिपी ज़रूर परेशान कर रही थी। कभी एकदम धूप तेज़ तो

कभी एकदम शीत लहर।

अब यहाँ स्वप्निल का मन नहीं लग रहा था। कोटा जाने की ज़िद करने लगी मगर रिज़र्वेशन था परसों का। उसे खुश करने के लिए हम कभी कुछ दिखाते तो कभी कोई लोभ देते। इसे हँसाने की बात पर लीजिए चैन्नई की एक बड़ी ही दिलचस्प बात याद आ गई। चलिए कुछ देर हमारे साथ चैन्नई के 'मरीना बीच' पर। यहाँ प्रवेश-द्वार से थोड़ा-सा आगे जाते ही एक आदमी खड़ा किया हुआ है। जिस की वेश-भूषा ग्रामीणों जैसी है, सिर पर साफ़ा है। वह एक ही मुद्रा में बिल्कुल प्रतिमा की तरह खड़ा रहता है। वाकई देखने में मूर्ति ही लगता है। इस को यदि कोई हँसा दे तो उसे...हज़ारों रुपए का पुरस्कार हाथों-हाथ दिया जाता है। चैन्नई घूमते समय गाइड महोदय ने बताया कि अभी तक इस को केवल एक महिला ने हँसाया है। वाकई वो व्यक्ति एकदम मूर्तिवत खड़ा रहता है दिन भर। हज़ारों सैलानी उसे हँसाने का प्रयास करते हैं, जाने क्या-क्या बोलते हैं, लेकिन मजाल क्या कि वह हँस जाए! वो तो किसी भी तरफ़ देखता तक नहीं। पलकें भी कब झपकता है, पता नहीं चलता। अब तो उस की आदत भी हो गई होगी, यह तो उस का व्यवसाय है और सैलानियों के लिए कौतूहल का विषय। आप को भी जानकारी मिली। चलिए वापस नैनीताल चलते हैं।

हम स्वप्निल को हँसाने के प्रयास में थे कि दो युवक एवं दो युवतियाँ वहाँ दर्शनार्थ आईं। दर्शन कर के वो लोग फोटो खिंचवाने लगे। हम दोनों उन्हें देखते रहे, उन की गतिविधियों का अवलोकन करने में बड़ा आनन्द आ रहा था। दोनों साल-दो साल पूर्व ही शादी किए हुए लग रहे थे। एक युवती तो काफी मेकअप में थी, मगर अच्छी भी लग रही थी, दूसरी बेहद इतरा रही थी। आश्चर्य एवं हँसी का फ़व्वारा तो तब फूटा जब हम जिन्हें पति-पत्नी समझ रहे थे, वो खयाल ग़लत निकला तो हमें अच्छा नहीं लगा। क्यों कि दोनों जोड़ियाँ अटपटी लग रही थीं। एक जोड़े में तो युवक बहुत ही हेल्दी व युवती एकदम पतली। हम यह सब केवल मनोरंजन के लिए ही देख रहे थे। इस दर्मियान 'यकीन' साहब एवं के.पी. जी कुछ दूर पड़ी बेंच पर जा कर लेट गए। हम भी बोर होने लगे एवं चारों पीछे बाज़ार की ओर हो लिए। वहाँ जा कर इधर-उधर टहलने लगे। कई पर्यटक बार-बार हम से टकराते रहे, यानी वो भी वहीं समय गुज़ार रहे थे। बाज़ार से लगा हुआ है, नैनीताल का सब से बड़ा मैदान, जिसे झील छोटी कर के बनाया गया है। ऐसा एक टैक्सी वाले ने बाद में बताया। सच भी है, इन पहाड़ियों में भला मैदान का क्या काम, लेकिन अब शह बस गए हैं तो मैदान की भी ज़रूरत पड़ेगी ही। नैनीताल के सारे खेल-कूद व अन्य कार्यक्रम इसी मैदान में होते हैं।

आज इस मैदान में काफ़ी गहमा-गहमी है, मंच सज रहे हैं, विद्यार्थियों की स्कूल-यूनिफ़ॉर्म में टोलियाँ बसों में से उतर रही हैं। कई टोलियाँ विभिन्न रंग-बिरंगी वेश-भूषाओं में सजी-धजी हुई हैं, वो भी सारे मेकअप के साथ। ज़ाहिर है इन कलाकारों को प्रोग्राम देने होंगे, इसी लिए अपने घरों से ही तैयार हो कर आ गए हैं। भीड़ से परेशान हो कर हम कुछ ऊपर मैन रोड पर आ गए हैं। पहले तो कुछ केले ले कर खाते हैं एवं वहीं खड़े हो कर सोच रहे हैं कि नसीब से मिले इस अच्छे खासे दिन का क्या सदुपयोग किया जाए। हमारा मन तो दूर पहाड़ियों में टहलने का है, मगर वहाँ पहुँचें तो कैसे? सो 'हिमालय व्यू' जाने का प्रोग्राम बना डाला। जहाँ पर हम खड़े हैं, वहाँ से पैदल रास्ता

भी पहाड़ी पर जाता है एवं 'रोप-वे' तो है ही। पैदल रास्ता जाता तो है, मगर कुछ आस-पास से जाता है। अतः वहीं के एक निवासी से जानकारी लेते हैं। वह हमें इशारा कर के रास्ता बता देता है, फिर हम ने वहाँ चल रही भीड़-भाड़ के बारे में पूछा तो वो बोले कि यह 'शरदोत्सव' की तैयारियाँ चल रही हैं, उन्होंने ने दीवार पर लगे हुए पेमप्लेट को दिखाते हुए कहा कि इस में सारी जानकारी लिखी है। हम ने एक नज़र उस पर डाली जिस में यह उत्सव 28 अक्टूबर, 2002 से 2 नवम्बर, 2002 तक होना लिखा है। पाँच दिवसीय इस आयोजन में विभिन्न सांस्कृतिक कार्यक्रम होंगे जैसे, गायन, लोकगीत, नृत्य, नाटक, खेलकूद, कवितामय कृष्ण-गीत, कव्वाली, कथक, नृत्य, पंजाबी-लोकगीत, शोभायात्रा, पतंगबाज़ी, तैराकी, संगीत-नृत्य, अल्पना प्रतियोगिता, पर्वतारोहण, घुड़सवारी, राजस्थानी संगीत, नौकायन, आतिशबाज़ी आदि-आदि। इन सभी प्रोग्राम्स में देश के कोने-कोने से कलाकार भाग लेने के लिए आमन्त्रित किए गए हैं।

## हिमालय व्यू प्वाइंट

इस 'कुमाऊँ शरदोत्सव' का सारा आयोजन कुमाऊँ शरदोत्सव समिति, नैनीताल द्वारा किया जाता है। हाँ, कवि सम्मेलन भी होता है। हमें अपनी खुशनसीबी पर फ़ख़ हो रहा है कि हम कितने शुभ अवसर पर नैनीताल आए हैं। आज इस उत्सव का शुभारम्भ है, इस लिए इतनी चहल-पहल चल रही है। गाड़ियों पर गाड़ियाँ आ रही हैं, सड़कों की सफ़ाई चल रही है। सोच-विचार कर हम ने बहुमत से फैसला लिया कि 'रोप-वे' द्वारा ही 'हिमालय व्यू प्वाइंट' चला जाए। पैदल चढ़ाई करने में थक भी सकते हैं, और देखते ही देखते हम लोग टिकट ले कर दस मिनट में पहुँच गए पर्वत की चोटी पर। यहाँ से पूरा नैनीताल नक्शे की तरह नज़र आने लगा। कुछ देर इधर-उधर टहलते हुए, हम लोग पीछे की ओर गए जहाँ से हिमाच्छादित चोटियाँ नज़र आती हैं, शायद इसी लिए इस स्थल का नाम 'हिमालय व्यू' रखा गया होगा। लेकिन ये क्या... जहाँ-जहाँ बर्फ़ है, वहाँ सब जगह श्वेत मेघ लेटे हुए हैं, जैसे पूरी प्लानिंग से यह साजिश की गई हो। पिछले दिन कौसानी से लौटते समय भी यही हाल था। वो तो खुदा का शुक्र है कि जाते समय बादलों का षड्यन्त्र नहीं था, वरना तो यह अलौकिक दृश्य देखने से वंचित रह जाते। यहाँ भी ख़ूब सारी दूकानें तो हैं ही। पहले तो इधर-उधर ख़ूब टहले, सारा मंज़र देखा। कुछ बच्चे वहाँ स्वीमिंग भी कर रहे थे। फिर एक रेस्टोरेंट पर जा कर बैठ गए, जहाँ से 'चाइना पीक' भी दिखाई देती है एवं पूरे नैनीताल के साथ-साथ वहाँ आने का पैदल रास्ता भी साफ़ दिखाई देता है। पहले हम लोगों ने एक-एक प्याला चाय ली। वहाँ से समूचा दृश्य बेहद सुन्दर लग रहा था। कितने ही सैलानी आ रहे थे-जा रहे थे। कुछ खा भी रहे थे, वहीं झूले में बालक झूल रहे थे।

इसी बीच एक पंजाबी दम्पति आया। पति-पत्नी दोनों काफ़ी स्मार्ट। साथ में 3-4 वर्ष का प्यारा-सा बच्चा भी। उन दोनों ने स्वप्निल को बुला कर स्नेह खिंचवाया, बच्चा भी बड़ा बुद्धिमान था। पहले ख़ाली झूले को झूला देता, फिर खुद बैठता ताकि दूसरे के द्वारा झूला देने के भरोसे नहीं रहना पड़े। कभी हम देवदार के वृक्षों को ग़ौर से देखते तो कभी चाइना पीक को, तो कभी

नीचे से ऊपर झाँकते नैनीताल को। वापस नीचे आने का मन नहीं कर रहा था। लेकिन 'रोप-वे' वाले ने मात्र एक घण्टा ही ठहरने के लिए दिया था। हम ने उन से निवेदन कर के कुछ समय बढ़वा लिया, ताकि सुकून से वहाँ सौन्दर्यपान कर सकें। यदि वो नहीं मानते तो हम ठहर कर पैदल ही उतरने का निश्चय भी कर चुके थे। 'चाइना पीक' से चीन की दीवार दिखाई देने की बात पर रेस्टोरेंट के मालिक ने कहा कि अब वहाँ से भी चीन की दीवार दिखाई नहीं देती, क्योंकि 'चाइना पीक' के कुछ हिस्से का रखलन हो गया है, जहाँ से यह दीवार दिखाई देती थी। जब कि हमारे टैक्सी ड्राइवर पंकज जी ने दो दिन पूर्व ही किलबरी में कहा था कि 'चाइना पीक' से चाइना की दीवार स्पष्ट दिखाई देती है। पता नहीं कौन-सी बात सच है। हाँ, चाइना की दीवार देखने की इच्छा ज़रूर हो रही थी। वहाँ से कुछ ऊपर जा कर पहाड़ी पर बैठ गए। वहाँ एक टमाटर के पौधे में बेर के बराबर टमाटर लगे हुए थे, लेकिन बिना पूरी जानकारी के खाते तो कैसे।

अब सूर्य देव पश्चिम की पहाड़ियों पर उतरने को आतुर दिखाई देने लगे। वैसे भी पहाड़ी इलाकों में एक घण्टा पहले ही शाम ढल जाती है। क्योंकि पहाड़ सूरज को अपने आँचल में छिपा जो लेते हैं। इसी प्रकार सुबह भी लगभग एक घण्टे तक भास्कर को आरमान में ऊपर नहीं आने देते, भई उन का इलाका है, उन की मर्ज़ी हो सो कर सकते हैं, मालिक हैं ये। इन्हीं को देखने के लिए तो हज़ारों मील की यात्रा कर के पर्यटक यहाँ आते हैं। शाम होने लगी, सुबह का खाना खाने की तो जैसे हम में से किसी को याद ही नहीं आई। कितनी ही बार बड़े लोग, बच्चों की भूलने की आदत पर डाँटते हैं कि 'खाना, खाना तो नहीं भूलते', लेकिन जनाब यह सच नहीं है। कभी-कभी आदमी अति व्यस्तता या बहुत सुकून मिलने पर खाना, खाना भी भूल जाता है। खाने से ज़ियादा जब उसे वैसे ही कुछ और मिल जाता है। यही सोचते हुए हम वहाँ छोटे से बाज़ार में गए, कुछ खाना-पीना टोला। स्वप्निल ने तो ज्यूस मँगवा लिया। 'यकीन' साहब ने कॉफी, के.पी.जी ने चाय। अब बचे हम, हम ने भी ज्यूस ही पसन्द किया ताकि कुछ एनर्जी मिल जाए। वहाँ से कुछ नए पेड़ भी दिखाई दे रहे थे, उन के नाम जानने की जिज्ञासा भी हो रही थी, सो वहीं के एक स्थानीय भद्रजन से हम ने इन पेड़ों के नाम पूछे और उन्होंने बड़ी शालीनता से नाम बताते हुए और भी जानकारी हमें दे दी। ये बात अलग है कि हमें वो नाम याद नहीं रहे।

इसी बाज़ार के पीछे ऊँचे टीले पर जहाँ हम हिमालय दर्शन करने गए थे, वहाँ बड़ी गन्दगी नज़र आई। वहाँ कुछ स्थानीय लोगों के झोंपड़े थे, कुछ पशु पालक भी थे, शायद इसी लिए होता है ऐसा, जहाँ आदमी है, वहाँ गन्दगी होगी ही, जब तक कि हम सफ़ाई का ध्यान नहीं रखेंगे। लेकिन, ये गन्दगी भी प्राकृतिक थी, रासायनिक नहीं। इस लिए ख़ास बुरी नहीं लगी। वापस नीचे आने पर देखा कि मैदान में कार्यक्रम का श्रीगणेश होने ही वाला है। बालाएँ रंग-बिरंगी नृत्य पोशाकों में सजी-धजी, सिर पर कलश लिये नृत्य करने को उद्भूत थीं। मन हो रहा था कि यहीं ठहर जाएँ, मगर एक तो सर्दी काफ़ी बढ़ गई थी और हम लोगों के पास पर्याप्त ऊनी वस्त्र नहीं थे। साथ ही कुछ फ़ेश होने की भी ज़रूरत महसूस रही थी। सोचा, होटल जा कर तरो-ताज़ा हो कर वापस आते हैं। इधर 'हिमालय व्यू' पर 'रोप-वे' के एक कर्मचारी ने बताया था कि यहाँ वेधशाला भी है, जो आम-आदमी के लिए खुली रहती है। वहाँ भी जाने का मन था।

अब हम काफ़ी थक चुके थे, सो रिक्शे से जाने का मानस बनाया, लेकिन यहाँ तो रिक्शे के



लिए बुकिंग होती है, टिकट लेना होता है। ऐसा पहली बार देख रहे थे। बुकिंग विण्डो पर काफ़ी लम्बी क़तार थी ही। यहाँ रिक्शे तल्लीताल से मल्लीताल एवं मल्लीताल से तल्लीताल ही चलते हैं। यहाँ समतल रास्ता भी मात्र झील के चारों ओर ही तो है। इस के सिवा तो रिक्शा कहीं जा ही नहीं सकता। ठेलों से तो यहाँ कोई काम ही नहीं। कुली होते हैं, वो ही सामान ढोते हैं। हाँ, रिक्शों का किराया फ़िक्स, मात्र पाँच रुपए, कोई लूट-खसोट का काम नहीं। ठीक भी है, यदि सारी क़ीमतें प्रशासन तय कर दे तो बहुत कुछ बहस-बाज़ी कम हो सकती है। क़ीमत फ़िक्स होने पर किसी प्रकार का कोई सन्देह भी नहीं रहता।

लम्बी क़तार देख कर हम लोग पैदल ही चल दिए। रास्ते में नैनीताल का पहाड़ी के ऊपर से लिया गया बड़ा ही सुन्दर पोस्टर देखा। लेने का मन भी किया कि कहीं यात्रा वर्णन के प्रकाशन के वक़्त काम आ जाएगा। मगर 38 रुपए की क़ीमत ज़ियादा लगी। वैसे भी मालरोड सैलानियों का बाज़ार होता है, सो यहाँ सब चीज़ें अधिक महँगी मिलती हैं। हम ने सोचा, उधर बस स्टेण्ड की बग़ल में स्थानीय मार्केट से ले लेंगे। शायद सस्ता मिल जाए। ये बात अलग है कि उधर यह पोस्टर मिला ही नहीं। एक-दो छोटे कार्ड ज़रूर ख़रीदे जो एल्बम में लगे हुए हैं। रास्ते में स्वप्निल ने तो पीज्जा ले लिया और आगे-आगे चल कर जल्दी से होटल पहुँच गई। जब तक हम लोग वहाँ पहुँचे, स्वप्निल हाथ-पैर धो कर पीज्जा खाने की तैयारी कर रही थी।

आज सर्दी कुछ ज़ियादा ही थी। हम लोगों ने भी गर्म पानी से हाथ-मुँह धोए एवं रज़ाई में दुबक गए। आज शरदोत्सव में 'अमित कुमार नाइट' का भी आयोजन था। जाने की बहुत इच्छा हो रही थी मगर सर्दी...। इधर 'यक़ीन' जी को बुखार भी होने लगा। कुछ देर बाद पटाखों की आवाज़ें आरम्भ में गूँजने लगीं। अब हम से न रहा गया, स्वप्निल और हम दोनों बाहर बालकनी में आए तो देखते क्या हैं- सारा आकाश आतिशी नज़ारों से दमक रहा था। पहाड़ी रात रंग-बिरंगी रोशनियों से जगमगा उठी। जैसे दीपावली आज ही आ गई हो। 10-15 मिनिट तक हम लोगों की नज़रें नीची नहीं हो पाई। बिल्कुल वैसी ही आतिशबाज़ी हो रही थी जैसी कि कोटा के दशहरे मेले के समापन के दौरान 'राजस्थान पत्रिका' समाचार पत्र की ओर से तीन-चार वर्षों से आयोजित हो रही है। अब हमें कार्यक्रम में उपस्थित नहीं होने का मलाल और ज़ियादा होने लगा। कुछ देर बाद अन्दर आए, भोजन के बारे में भी कुछ सोचना था। इधर 'यक़ीन' साहब को बुखार चढ़ ही रहा था। उन से हम ने होटल में रुकने को कहा एवं हम लोग खाना खाने जाने लगे, मगर वो नहीं माने और कपड़े पहन-ओढ़ कर साथ हो लिए, वैसे काफ़ी हिम्मत वाले हैं। बस स्टेण्ड के पास स्थानीय बाज़ार में 20 रुपए थाली में खाना अच्छा मिल गया। हम लोग प्रोग्राम में जाने की बात करने लगे तो, दूकान मालिक बोले कि 9-10 बजे इतनी सर्दी हो जाएगी कि हम भी सहन नहीं कर सकते, आप कैसे कर पाएंगे। वेधशाला भी जाना था, मगर मौसम साफ़ नहीं होने के कारण, चाँद-तारे भी ओझल थे, कई कारणों से कार्यक्रम रद्द करना पड़ा। वहीं कुछ पोस्टर भी बिक रहे थे, हम ने वही पोस्टर ढूँढा (जिस का पूर्व में ज़िक्र किया था), मगर नहीं मिला, दूकान वाले ने कहा, बहन जी ऐसे पोस्टर मालरोड पर ही मिलते हैं, वो सैलानियों का बाज़ार है, दाम भी वैसे ही हैं। वाकई सही ही तो कह रहा था। इस बाज़ार में समोसा दो रुपए का था, उधर हमें 12 रुपये का बताया था। वहीं से बुखार की दवाइयाँ भी ख़रीदीं। 'यक़ीन' साहब पहले डॉक्टर की प्रेक्टिस भी कर चुके हैं, सो इस बारे में काफ़ी ज्ञान रखते ही हैं। मुख्य रूप से तो इन का बुखार देख कर ही

अमित कुमार को सुनने नहीं जा सके। सर्दी की वजह से तो शायद चले भी जाते। यहाँ एक बात यह भी बताने का जी हो रहा है कि 'यकीन' साहब को नैनीताल में मेडिकल स्टोर ढूँढने में काफ़ी दिक्कत हुई। मेडिकल स्टोर बहुत अन्दर एक गली में जा कर मिला। रिसेप्शनिस्ट से पूछा तो मालूम हुआ कि यहाँ की जलवायु ही ऐसी है कि यहाँ के लोग बहुत कम बीमार होते हैं। इस लिए मेडिकल स्टोर्स और डॉक्टर यहाँ नहीं के बराबर ही मिलेंगे। देखा जलवायु की स्वच्छता का असर? अपने मैदानी इलाकों में तो शहर की हर गली में दर्जनों डॉक्टर और मेडिकल स्टोर्स होते हैं और अब तो गाँव-गाँव में प्राइवेट क्लिनिक खुल गए हैं। वापस आ कर रज़ाइयों में डट गए। स्वप्निल तो खाना खाने गई नहीं थी, सो आराम से रज़ाई का लुत्फ़ उठाते हुए टी.वी. के दर्शन कर रही थी। अपने पसन्द के सीरियल देख रही थी। बच्चों को टी.वी. मिल जाए, फिर क्या चाहिए। वो टी. वी. देखती रही और हम नींद देवी की शरण में चले गए। हाँ, बीच-बीच में एक-दो बार थोड़ी आँख खुली तो देखा साँय-साँय करती हुई काफ़ी तेज़ हवा चल रही थी, जैसे कोई तूफ़ान आने वाला हो। मौसम काफ़ी खराब होना चाहिए, ऐसा आभास हो रहा था। हम सब कुछ भगवान पर छोड़ कर सो गए।

सुबह उठते ही बाहर निकले तो मौसम एकदम काँच की तरह साफ़ निकला। ईश्वर की लीला है साहिब, पल में तोला पल में माशा। भगवान जी को धन्यवाद दिया और दैनिक कर्मों से निवृत्त होने लगे। चाय-चाय पी, 'यकीन' साहब का बुखार पूरी तरह उतर चुका था। लगभग एक घण्टे में हम लोग नहा-धो कर एकदम तरो-ताज़ा हो लिए। पैकिंग भी की, क्यों कि आज वापसी का हमारा रिजर्वेशन था। सारी पैकिंग कर के पहाड़ी से नीचे आए। हमेशा की तरह झील के किनारे लगे नल से पानी की बोतल भरी। होटल के पानी की शुद्धता का भरोसा नहीं, बोरिंग का होता है, या फिर स्टोर किया हुआ। पानी के मुआमले में तो हम एकदम सख्त हैं। वहीं एक छोटी-सी छतरीनुमा चबूतरी बनी है, जिस में श्रद्धालु आते हैं, हाथ जोड़ते हैं एवं घण्टा बजाते हैं। घण्टे की आवाज़ सुबह के चार बजे से प्रारम्भ हो कर निशा के बारह बजे तक आती रहती है। कई बार हम व स्वप्निल सोचते रहे कि यह घण्टा-ध्वनि कहाँ से आती है, आज इस का राज़ खुला, लेकिन कई सवाल फिर भी मन में ही रह गए। किसी से पूछना चाह रहे थे, मगर पूछ नहीं पाए। दो-चार मिनिट तक झील को जीभर निहारते रहे, क्यों कि इस से विदा लेने का वक़्त था, शाम को सीधे काठगोदाम पहुँचना था। पहाड़ों-देववृक्षों को भी आँखें भर-भर कर देखा, कुछ देर तो ऐसा लगा मानो, विदाई के पलों में इन का भी जी भर आ रहा हो, हम लोगों से बिछड़ कर।

आज इस सकल प्रकृति से हमें विशेष आत्मीयता का स्पर्श महसूस हुआ। बार-बार ऐसा महसूस हुआ कि मानो वे कह रहे हों कि फिर जल्दी हम से मिलने आना, हम तुम्हारी प्रतीक्षा करेंगे। वैसे तो यहाँ हज़ारों पर्यटक आते हैं, लेकिन ज़ियादातार विलास एवं ऐश्वर्य के लिए आते हैं, या पैसे को भोगने के लिए आते हैं या गर्मी से राहत पाने हेतु। मगर तुम्हारे जैसे निश्चल प्रकृति प्रेमी बिरले ही आते हैं। प्रकृति से प्रेम करने के लिए बालक की तरह मासूम, निर्मल, निश्छल मन ज़रूरी है, ऐसा मन ही प्रकृति के कण-कण में परमसत्ता का अहसास कर सकता है। प्रकृति के अपूर्व सौन्दर्य को निहारने के लिए खूबसूरत दृष्टि भी चाहिए। पृथ्वी एवं पर्यावरण को बचाने के लिए आज सर्वाधिक ज़रूरत है तो प्रकृति-प्रेम की ही। समस्त पर्यावरणीय समस्याओं का हल प्रकृति-प्रेम से चुटकी बजाते हल हो सकती है।

मन को ढाढस बँधा कर हम हिना ट्रेवल एजेन्सी गए। मुक्तेश्वर घूमने के उस ने 1000 रुपए माँगे साथ ही काठगोदाम तक भी छोड़ देंगे। वापस आ कर हम ने तिराहे पर पंकज जी के भाई से भी बात की। पहले वो भी 1000 रुपए ही बोले फिर 900 रुपए में बात बनी। उन्होंने कई विशेष स्थल दिखाने की भी बात कही। कहा कि यहाँ की ऐसी विशिष्ट जगहें दिखाऊँगा कि आप भी याद रखोगे। हम लोगों ने उन्हें गाड़ी लेने भेजा एवं पहाड़ी नींबू, बाल-मिठाई जो कि अल्मोड़ा में नहीं खरीदी थी, खरीदी। पहाड़ी नींबू सन्तरे के बराबर होते हैं। कई घरों में एवं पहाड़ी रास्तों में लगे हुए भी देखे थे। रामकरेले भी लिए, उन के बनाने की विधि भी पूछी। करेले घर आ कर बनाए, कड़वे बिल्कुल नहीं लगे, हाँ, उन के ऊपर उगे महीन काँटे मुँह में चुभे ज़रूर। इन की ऊपरी परत मैदानी करेलों से भिन्न थी, खुरदरेपन की जगह, सपाट परत जिस पर बारीक-बारीक काँटे लगे हुए थे। यहाँ नारंगी रंग की शिमला मिर्च जैसी सब्ज़ी भी मिल रही थी। हम ने नाम पूछा तो बताया गया कि इसे कोकी का फूल कहते हैं, लगभग एक ऐसा ही फल हम ने मनाली में देखा था, जिसे वहाँ जापानी फल कहा जाता है। इस में रसीला गूदा होता है, छील कर खाते हैं, बड़ा ही स्वादिष्ट लगता है। खाया था। एक पान की दूकान पर मालिक ने कुत्ते को शॉल ओढ़ा कर लिटाया हुआ था। यह दृश्य हम ने स्वप्निल को दिखाया। सही है, प्राणीमात्र के प्रति सहानुभूति रखनी चाहिए। वैसे यह पालतू कुत्ता था।

अरे, हाँ यह तो बताना ही भूल गए कि यहाँ सुअर एवं मच्छर नहीं थे। इतने सुहाने मौसम एवं सर्दी में बेचारे मच्छर कैसे रह सकते हैं, फिर दोनों के लिए गन्दगी भी ज़रूरी है, जो यहाँ कम ही देखने को मिली। लगातार सफ़ाई होती रहती है। यहाँ भी अन्य हिल स्टेशनों की तरह पॉलीथीन पर पूरी पाबन्दी है। काश! ऐसी पाबन्दी पूरे देश में होती, पर्यावरण सुरक्षा के लिए इतने अहम सवाल पर भी किसी का ध्यान नहीं है। जनता तो अपनी ज़रूरतों व टेंशन में इतनी उलझी हुई है कि उसे फुर्सत ही नहीं, इन बातों पर गौर करने के लिए सब लोग स्वार्थी एवं आराम तलाश रहे हैं। कुछ भी खरीदना है तो घर से थैला ले कर कौन जाए, पॉलीथीन जो है। पहले भी तो सब चीज़ें झोले में आया करती थीं। अब भी आ सकती हैं, यदि पॉलीथीन बने ही नहीं तो, मगर नेताओं को, देश के भाग्यविधातों को कुर्सी, घूस, वोटों एवं घोटालों से फुर्सत मिले तब ना। पर्यावरण से, प्रकृति से किस को क्या मतलब? उन की बला से जाएँ भाड़ में। विदेशों में सरस्ती होने से बहुत अनुशासन है, बहुत कुछ समस्याएँ कम हैं, विकास भी अधिक है। जुर्माना लग जाए एवं कर्मचारी ईमानदार हों तो क़ानून-पालन बड़ा आसान है। चण्डीगढ़ की सड़कों पर कोई पशु विचरण नहीं कर सकता। ऐसा होने पर 500 रुपए जुर्माना होता है, तो जनाब एक भी पशु हमें वहाँ नज़र नहीं आया, वहाँ पालन होता है क़ानून का। लोगों ने विदेशों की तरह घरों के बाहर बिना फ़ैन्सी के ही गार्डनिंग कर रखी है। हम ने स्वयं ही यह सब देखा है। आज जिधर भी देखिए कचरे में 90 प्रतिशत पॉलीथीन की थैलियाँ ही मिलेंगी, जो भूमि की दुश्मन तो हैं ही, कितनी ग़ौ-माताओं की जान भी ले चुकी हैं। बेचारी भोली-भाली गायें थैली सहित फेंकीकी गई वस्तुओं को खा लेती हैं। शनैः शनैः उन के पेट में कई किलो थैलियाँ इकट्ठी हो जाती हैं। वो क्या जानें कि थैली नहीं खानी चाहिए, ये तो मूक, सरल जीव हैं, लेकिन हम किसी की रक्षा नहीं कर सकते तो कम से कम किसी की जान लेने का हक़ भी तो नहीं रखते। चलिए कहीं तो नियमन है, इसी में सब करते हैं। बिना पॉलीथीन के भी काम चल सकता है, पहले भी चलता ही था। कहना आसान है

सो, हम ने भी कह डाला इतना कुछ, अमल की बात आए तो शायद हम भी कन्नी काटने लग जाएं। लेकिन सच कहें, हम पर्यावरण-रक्षा के लिए यथा-सम्भव प्रयास हमेशा करते रहते हैं। पंकज जी की प्रतीक्षा में हम वहीं सब्जी वाले से कुछ पूछताछ करते रहे। चेस्ट-नट को ये लोग बोंगड़ कहते हैं, ऐसा बातों ही बातों में मालूम चला। वैसे ये लोग परस्पर कुमायूँ बोली में बात करते हैं। यही यहाँ की सर्वाधिक बोली जाने वाली क्षेत्रीय बोली है। कुछ देर में हाथों से चलाने वाली ट्रौली में ढेर सारी ताज़ा सब्जियाँ आई। कहा ना! यहाँ ठेले तो चलते ही नहीं, या तो कुली हैं, जो पीठ पर सामान बाँध कर चलते हैं या फिर ट्रौलियाँ हैं।

कुछ भी हो मगर कुली भी तो इन्सान ही हैं। हमें तो बड़ी दया आती है, जब वो ढेर सारे सामानों को पीठ पर बाँध कर पहाड़ों पर चढ़ते हैं, लेकिन उन की भी मजबूरी है। पापी पेट के लिए यह सब करना पड़ता है। सब हमारी ही तरह दयावान हो जाएं तो बेचारे कुली तो भूखों ही मर जाएंगे। हर भावना का मूल्य परिस्थिति सापेक्ष भी होता है।

## घोड़ा खाल मन्दिर

लीजिए, पंकज जी गाड़ी ले कर आ गए। हम उन्हें होटल से थोड़ी दूर छोड़ कर सामान ले कर आए एवं इस क्षेत्र को 'बाय' कह कर चले अगली मंजिल की ओर, यानी 'घोड़ाखाल मन्दिर'। सुबह की चटख धूप सुरम्य वादियों में फूल बन कर बिखरी थी। चीड़ के पेड़ों के बीच से धरती को निहारने के प्रयास में वनों की सघनता में घुसपैठ करता दिखाई दे रहा था सूरज। इधर चीड़, बाज़, सुरई के पेड़ भी उस के प्रयास को असफल करने में कोई कसर नहीं छोड़ रहे थे। इन्होंने धरा-सुन्दरी को कहीं हरी पतियों से तो कहीं सूखी पतियों से पूरी तरह छिपा रखा था, बेचारा सूरज कितना विवश हो रहा था, इस सघन हरियाली की ज़िद के आगे अपनी प्रेयसी धरती का दृष्टि-स्पर्श भी नहीं कर पा रहा था। हाँ, रही-सही कसर पूरी कर दी डामर की गहरी सलेटी सड़कों ने, जो भी हो ऊपर नीलाभ, चारों ओर हरीतिमा, बीच में लहराती, बल खाती सड़कों की तो बात ही मत पूछिए, मन तो होता है कि टैक्सी में से उतर कर पैदल ही चला जाए। इतना खुशनुमा मौसम और पैदल भ्रमण। बीच-बीच में पत्तों पर पड़ती धूप काँच की तरह आँखों को ज़रूर चुँधिया रही थी। ऐसा लगता था मानो, इन पेड़ों पर हज़ारों काँच जड़ें हों। बेचारा सूरज सारा गुरसा इन पतियों पर ही उतार रहा था। उस की रोशनी यहीं से प्रतिबिम्बित हो रही थी। हवा का झोंका आता और सारे काँच झिलमिला उठते। बिल्कुल लहरों की तरह दमक रहीं थीं, पतियाँ भी। शायद निर्मलता की वजह से। मैदानी सड़कों के किनारे पर लगे पेड़ों की पतियों पर तो धूल की इतनी पर्तें जमा हो जाती हैं कि इन की स्वाभाविक हरीतिमा न जाने कहाँ गुम हो जाती है और तब ये पेड़ हमें बहुत बुरे लगते हैं। इन्हें देख कर घबराहट-सी होने लगती है, अस्तु। इन ऊँचे-नीचे रास्तों पर चलते हुए जीवन के उतार-चढ़ाव का भी अहसास हो रहा था। इन्हीं रास्तों की तरह ज़िंदगी में भी तो सदैव उतार-चढ़ाव चलते ही रहते हैं, जैसे ये नहीं घबराते, सहज सन्तुलित रहते हैं, वैसे ही हमें भी हर हाल में खुश रहने की प्रेरणा जाने-अनजाने में ये पन्थ दे जाते हैं।

सच, पहाड़ी हवा में एक अलग ही महक होती है, एक सुहाना अहसास भीतर जागता है, ऐसा लगता है कि जैसे ये हवा रोम-रोम को जीवन्तता प्रदान कर रही है। साथ यूँ ही लग रहा था कि यह सफ़र ऐसे ही चलता रहे, कभी ख़त्म ही न हो, बस चलते रहें-चलते रहें...। काश! ऐसा होता, लेकिन इस दुनियादारी में यह सब हो ही कहाँ पाता है। चलना, फिर विराम, फिर चलना यही वास्तविक जीवन है। ये तो कवि मन है, इसे जो अच्छा लगता है, वैसी कल्पनाएँ करता रहता है और फिर एक कवि यह भी तो कह गए हैं, जो बड़े पते की बात है। कहा तो पानी के सन्दर्भ में है, लेकिन जीवन पर सौ फ़िसदी लागू होता है। वो यह कि- ‘बह जाए तो पानी है, ठहर जाए तो मोती है।’ वाकई, बड़े मर्म की बात है। हम इन्हीं ख़यालों में खोए थे कि ड्राइवर साहब ने गाड़ी के ब्रेक लगाया और हम लोग हकीकत की धरती पर एक ही झटके में आ गए। कार के दरवाज़े खोलते हुए बोले कि- लीजिए ‘घोड़ाखाल मन्दिर’ आ गया। यहाँ से सीढ़ियों से पहाड़ी पर जाइए, ऊपर मन्दिर है। हम लोग टैक्सी से बाहर आए। पहले चारों ओर बरबस ही आँखें घूम गई। क्या ग़ज़ब का दृश्य था। पहाड़ों में तो कहीं भी निकल जाइए, सौन्दर्य कण-कण में बिखरा पड़ा है। बस देखने वाली आँखें व महसूस करने वाला मन चाहिए। कहा भी तो है- “सौन्दर्य आँखों में होता है, वस्तु में नहीं।”

कोई भी वस्तु एक व्यक्ति के लिए बेहद ख़ूबसूरत होती है, दूसरे के लिए साधारण। हमें नैनीताल इतना प्यारा लग रहा है, सम्भव है किसी दूसरे शख्स को यह बिल्कुल भाए ही नहीं। ‘जैसी दृष्टि वैसी सृष्टि’। मन्दिर की यथार्थिती एवं वहाँ लगा छोटा-सा बाज़ार देखने लगे। यहाँ सब से ज़ियादा घण्टों की तथा घण्टियों की दूकानें लगी हुई थीं।

हम लोग पहाड़ी पर चढ़ने लगे। धीरे-धीरे आनन्द के साथ मन्दिर तक पहुँच गए। वहाँ कई छोटे-छोटे मन्दिर बने हुए थे। भैरव जी का, शिव-पार्वती जी का, इन मन्दिरों में प्रतिमाओं के साथ घोड़े की मूर्तियाँ भी थीं। भीड़ बहुत अधिक थी। दर्शन में परेशानी ज़रूर आई। दर्शनोपरान्त इधर-उधर घूम कर पूरे मन्दिर का अवलोकन किया। घण्टियों को भी देखा। हमें सर्वाधिक आकर्षित किया यहाँ चारों ओर लगी हुई घण्टियों ने, छोटी से ले कर बड़ी-बड़ी घण्टियाँ, वो भी हज़ारों की तादाद में थीं। घण्टियाँ ही घण्टियाँ...आनन्द आ गया। गिनने लगे तो सारा दिन लग जाए। स्वप्निल ने तो इन के लगाए जाने का कारण भी पूछा। हम ने इसे तसल्ली दी कि ज़रूर मनोकामनाएँ मानने व इन के पूरी होने के उद्देश्य से ही ये घण्टियों का मेला लगता होगा। दूर-दूर से इन मन्दिरों में श्रद्धालु इसी लिए भी आते हैं और निःस्वार्थ भाव से भी आते हैं। पंचमढ़ी हिल स्टेशन पर भी एक पहाड़ी पर महादेव जी का मन्दिर है, वहाँ भी मनोतियाँ पूरी होने पर घण्टा चढ़ाने की श्रद्धा है। वहाँ भी लाखों की तादाद में घण्टे लगे हुए हैं। भई! हमारा देश तो है ही धर्म प्राण। मन्दिर में पीछे की तरफ़ कुछ बकरे भी बँधे हुए थे, नीचे ज़मीं भी लाल थी। शायद यहाँ बलि देने की प्रथा भी है। हम सब तो इन घण्टियों को देख-देखकर बेहद हैरान हो रहे थे। बलि के लिए तो क्या कहें? बेचारे निरीह प्राणी और बलि? कहने लगेंगे तो पचासों पृष्ठ भर जाएँगे। आप भी वही सोचते होंगे जो हम सोचते हैं। खुद ही समझ लीजिए।

अरे हाँ, घण्टे मन्दिर में ही नहीं लगे थे, अपितु सीढ़ियों तक लगे हुए थे। शायद मन्दिर में ठौर नहीं होने पर भक्तगण सीढ़ियों पर ही लगा जाते हैं। यहाँ लगे बड़े-बड़े घण्टों को रस्सी से बाँध

रखा था ताकि यात्री इन्हें नहीं बजा सकें। वर्ना तो...। यहाँ का तो फोटो भी जरूर लेना चाहिए था, मगर कैमरा तो हम नीचे ही भूल गए थे। अब किस की हिम्मत कि नीचे जा कर कैमरा ले कर आए। सब एक-दूसरे से कहते रहे...कहते-कहते नीचे भी आ गए। पंकज जी से जब हम ने घण्टियों के बारे में पूछा तो बोले- लाखों घण्टियाँ तो नीचे गोदाम में भरी हैं। हम यही सोच रहे थे कि जब कहीं खाली जगह ही नहीं बचेगी तो श्रद्धालु घण्टे कहाँ बाँधेंगे? हमारी जिज्ञासा का समाधान हो गया। हम ने पुनः पूछा, लेकिन मन्दिर का नाम घोड़ाखाल क्यों पड़ा? तो बोले कि मन्दिर में घोड़ों की प्रतिमाएँ भी लगी हुई हैं, इसी लिए। मगर हम पूर्णतः आश्वस्त नहीं हो सके। अभी भी हमारे मन में यह जिज्ञासा है। हम ने उन से एक सवाल और किया कि इन घण्टियों को बेचते नहीं हैं क्या? वो बोले, शायद नहीं, इसी लिए तो गोदाम भरे हैं। उन्होंने एक बड़ी इन्ट्रेस्टिंग बात बताई कि यहाँ वर्ष में सैकड़ों शादियाँ होती हैं। अपनी मर्जी से शादी करने वाले जोड़े भाग कर यहाँ शादी कर लेते हैं, जो वैध मानी जाती है। हम ने कहा यह भी खूब रही।

नीचे आ कर समझ में आया कि यहाँ इतनी घण्टियाँ क्यों बिक रही हैं। याद है आप को, अभी 2-3 दिन पूर्व सातताल में हम ने 'बाज़' फ़िल्म की शूटिंग देखी थी, वही फ़िल्म कुछ महीनों पूर्व पर्दे पर देखी, जिस में इस मन्दिर की कई मिनिट की शूटिंग है। यथा, जब करिश्मा कपूर नैनीताल आती है तो रास्ते में रुक कर इस मन्दिर में दर्शनार्थ जाती है। शायद मन्नत भी माँगती है, दीनू मोरिया के साथ होती है। वह पूछता है कि क्या माँगा है? अपनी देखी हुई जगह को फ़िल्म में देख कर बड़ा अच्छा लगा। भीमताल में कुछ युवक बातें कर भी रहे थे कि कल मन्दिर में शूटिंग है, तब हमें पता नहीं था कि इसी मन्दिर में होनी थी।

वैसे पंकज जी स्वभाव से सरल एवं खुशमिज़ाज लगे। पूरे रास्ते कुछ न कुछ सुनाते ही रहते थे, लेकिन हमें डर भी लगता था कि कहीं ध्यान न बँट जाए, गाड़ी जो चला रहे हैं। हाँ, ड्राइविंग पर पूरा कमाण्ड है इन का, टेढ़े-मेढ़े पहाड़ी रास्तों पर इतनी अच्छी ड्राइविंग काबिले-सताइश थी। मैदान वाला अच्छा ड्राइवर भी यहाँ गाड़ी नहीं चला सकता। इस बारे में हम ने उन की तारीफ़ भी की तो बोले, देवी माँ की कृपा है। रोज़ का ही काम है हमारा, वर्षों से यही काम करता आ रहा हूँ। जहाँ भी रास्ते में धार्मिक स्थल आते, वे सिर जरूर झुकाते। ईश्वर में इन की गहरी आस्था साफ़ ज़ाहिर थी। कद ठीक-ठाक, रंग गोरा, हालां कि यहाँ के सभी निवासी हमें गोरे ही नज़र आए। जलवायु का असर कहाँ जाएगा, पहाड़ी बस्ती है। पंकज जी पढ़े-लिखे एवं संस्कारित भी हैं, जो इन के व्यवहार से झलक रहा था। क्यों कि आदमी के रहन-सहन, बोलचाल से उस की संस्कृति एवं सभ्यता का कुछ तो पता लग ही जाता है। हम ने पिछले टुअर में, उन से पूछा था कि इस व्यवसाय में रोज़ी-रोटी चल ही जाती होगी तो वे बोले थे कि- “हाँ दाल-रोटी मिल जाती है और हम पहाड़ी बाशिन्दों को चाहिए भी क्या? यहाँ के लोग सन्तोषप्रद होते हैं, अधिक लोभ-लालच यहाँ नहीं मिलेगा। बाहर के जो व्यापारी यहाँ हैं, उन के बारे में हम नहीं जानते। हाँ, घूमने के मौसम में ही हमारी आय अच्छी होती है, उसी से साल भर का गुज़ारा होता है। हमारा पहाड़ी व्यवसाय केवल सीज़न में ही चलता है, इसी लिए हम लोग दाल-रोटी से ज़ियादा कमा भी नहीं पाते, क्यों कि सर्दियों में तो बैठ कर ही खाना होता है। हमारे तो दाता पर्यटक ही हैं।”

जो भी हो पंकजी जी बड़े विनोदी स्वभाव के निकले। गाड़ी में कई चुटकुले सुनाते चलते या

फिर सैलानियों के किरसे। कभी-कभी गाड़ी की आवाज़ में हम पूरी बात ठीक से सुन नहीं पाते तो, हम पुनः पुनः पूछते और वो बताते जाते। बातों ही बातों में पिछली रात के नैनी झील पर होने वाले प्रोग्राम की बात चली तो वे बोले कि आप लोग गए या नहीं? बड़ा अच्छा समारोह रहा। हज़ारों दीप झील की सतह पर तैराए गए। पूरी झील रोशनी से नहा उठी। पानी और अग्नि का ये मेल देखते ही बनता था। बिल्कुल आग घुल गई थी पानी में। कितना रोमाण्टिक था वह दृश्य, पूछिए मता। उसी के साथ एक कलाकार ने एक ही डोरी से ढाई सौ पतंगें उड़ाईं। आकाश रंगीन हो उठा। रंग-बिरंगी तितलियों-सी पतंगें हवा से बातें करतीं बड़ी प्यारी लग रही थीं। हम ने कहा, हम नहीं जा पाए तो वे बोले, आप को जाना चाहिए था। ऐसे सुनहरे अवसर पर यहाँ आए और समारोह देखा भी नहीं। वैसे मैं भी 8:30 बजे सर्दी अधिक होने के कारण घर आ गया था। अमित कुमार को नहीं सुन सका। हम ने उन से पूछा कि इस समारोह में कवि-सम्मेलन नहीं करवाते? वे बोले-आयोजक हमारे स्वास मिलने वाले हैं, अगले वर्ष करवाएंगे और आप को ज़रूर बुलवाएंगे। हम ने अपने कवि होने का जरा-सा इशारा जो कर दिया था। यदि आप आज रुक जाएं तो कवि-सम्मेलन तो हम कल ही करवा दें। हम ने कहा रिज़र्वेशन हो चुका है। उन्होंने 'रनो फाल' में हमारी रुचि देखते हुए कहा कि 'रनो फाल' पर भी फोन कर दूँगा। उन्होंने हमारा परिचय कार्ड भी लिया।

## टी एस्टेट

एक के बाद एक सुन्दर पर्वत शृंखलाएँ, घाटियाँ, हम पार करते रहे। बीच में फिर वो बोले कि अब आप को मैं टी एस्टेट ले चलता हूँ, वहाँ जा कर आप खुश हो जाएंगे। हम ने कहा कि टी एस्टेट तो ऊटी में हम खूब देख चुके हैं। वे तपाक से बोले, यहाँ का देखिए फिर कहिएगा। अपनी-अपनी जगह का अलग-अलग सौन्दर्य होता है। मैं वहाँ आप को वहीं की बनी हुई चाय पिलवाऊँगा, चखिएगा, फिर बताइएगा। वैसे चाय तो वे लोग पर्यटकों को पिलाते नहीं, मगर मुझसे विशेष रूनेह रखते हैं सो, मेरी बात टालेंगे नहीं और ये कहते-कहते आ गए हम चाय के बाग़ान में। वाँव, स्वप्निल के मुँह से अनायास ही निकल पड़ा। वाकई, ग़ज़ब का मनोरम दृश्य था। ऊटी का अलग था, यहाँ का अलग। यहाँ की हरीतिमा गहरे हरे रंग की थी। गाड़ी से उतरे, रोड़ के दोनों तरफ़ चाय के बाग़, जिन में देवदार के पेड़, चार चाँद लगा रहे थे। बाग़ में प्रवेश किया, तीन-चार महिलाएँ चाय की पतियाँ चुन रही थीं, वैसे ही जैसे फ़िल्मों देखा करते थे। पीठ पर टोकरियाँ बँधी थीं, जिन में वे पतियाँ चुन कर रखतीं हैं। सब से पहले हम दोनों, माता एवं पुत्री उन के पास पहुँचे। उन्हें पतियाँ तोड़ते हुए देखने लगे। फिर उन से ढेर सारी बातें कीं। हम से अपनापन पा कर वे भी बड़ी प्रसन्न हो रहीं थीं। बड़े प्रेम से बतिया रहीं थीं। हम ने दो-चार पतियाँ तोड़ीं और उन्हें दीं तो वे बोली कि ऐसे नहीं तोड़ते, केवल ऊपर वाली ढाई पतियाँ ही काम की होती हैं। 'यही तोड़ी जाती हैं'। हम ने पूछा, और सारी पतियाँ बेकार हैं? वे बोली हाँ, ये किसी काम की नहीं हैं, क्यों कि ड्रायर पर ये ही चलती हैं, पर हमारा मन मानने को तैयार नहीं। ढाई ही क्यों चलेगी, दो क्यों नहीं...हम मन में सोचने लगे। हम ने 'यकीन' जी को इशारा कर के बुलाया एवं उन बालाओं के साथ दो-तीन फोटो खिंचवाए, तो वे भी बड़ी प्रसन्न हुईं। हम ने कुछ फोटो पतियाँ तोड़ते हुए भी

खिंचवाए एवं कुछ पतियाँ बैग में रख लीं।

इन ललनाओं की भाषा कुमाऊँनी और हिन्दी का मिला जुला स्वरूप थी। बड़ी भोली लगती, बिल्कुल पहाड़ी नदी की तरह। रहन-सहन, वेश-भूषा पहाड़ी ही थी। इन को देख कर इतना ज़रूर लग रहा था, जैसे यहाँ भी नारी-श्रम का शोषण होता होगा। जितना कार्य ये दिन भर करती होंगी, उतना पारिश्रमिक शायद इन्हें नहीं दिया जाता होगा। वैसे भी हर क्षेत्र में मज़दूर वर्ग का शोषण सदियों से हो रहा है, कोई नई बात नहीं है, शिक्षा का अभाव, इन की मजबूरियाँ, धनी वर्ग की स्वार्थ लिप्सा अभी भी हमारे देश में यथावत है। तदुपरान्त हम सब लोग मिल कर खेतों में इधर-उधर विचरण करने लगे। खेतों के पीछे का दृश्य गहरी हरियाली से अलग ही सुरम्य बन पड़ा था। के.पी. जी भी अभिभूत हो रहे थे। यहाँ चाय के छोटे-छोटे पौधे भी तैयार किए जा रहे थे। छोटे गमलों में नर्सरी की हुई थी। मन हुआ कि दो-चार घण्टे यहीं बैठ कर प्राकृतिक सौन्दर्य का रसपान किया जाए। आँखें हैं कि तृप्त होने का नाम ही नहीं ले रही थीं। पहाड़ों पर जाओ तो काफ़ी फुर्सत में ही जाना चाहिए। भागते-भागते जाने में पूरा लुप्त नहीं उठा पाते। बस इतना हो जाता है कि देख लिया।

हमें तो पहाड़ों पर सर्वाधिक सुन्दर देवदार के वृक्ष लगे। ज़रूर देवताओं के यहाँ लगे होंगे ये, तभी इन का नाम उन के नाम से जुड़ा होगा। इन का नाम देवदार है तो देवताओं से ज़रूर इन का सम्बन्ध होगा। देवभूमि की तरह इन का सौन्दर्य अप्रतिम एवं दिव्य है। इस के बाद पंकज जी चाय की छोटी सी फैक्ट्री में ले गए। वहाँ पर बड़ा-सा ड्रायर लगा हुआ था, बड़ी-बड़ी छलनियाँ भी थीं। वहाँ के मैनेजर ने ड्रायर चला कर भी दिखाया और हमें समझाया कि चाय-पतियों को इस में दो-तीन बार चलाया जाता है, उस के बाद छान कर पैक कर दिया जाता है। यानी बिल्कुल प्राकृतिक चाय। ऊटी में तो गाइड ने टी-एस्टेट से गुज़रते हुए दूर से ही पहाड़ी पर लगी हुई बड़ी-सी चाय-फैक्ट्री दिखाई थी। जब कि कार्यक्रमानुसार उसे भीतर ले जा कर दिखाना था। कुछ देर बाद हमें वहीं की चाय भी पिलाई गई। सादा पानी में थोड़ी चाय की पत्ती उबाल कर उसमें चीनी और नीबू की कुछ बूंदें मिलाई और छान कर कपों में डाल दी, चाय तैयार। पहली बार चाय का अस्त स्वाद चखा था, जो बाज़ार की चाय से एकदम अलग था। बड़ा उमदा पलैवर। अब हमें महसूस हुआ कि बाज़ार की चाय में कुछ न कुछ तो अलग मिलावट की ही जाती है, चाहे पलैवर ही सही। यह फैक्ट्री सरकारी थी। यहाँ 260 रुपये में एक किलो चाय के पैकेट भी मिल रहे थे। हम ने 65 रुपये में 250 ग्राम का पैकेट लिया, क्योंकि उस से बड़ा हमें लेने नहीं दिया गया। यह फैक्ट्री 1965 ई. में प्रारम्भ हुई थी। इस का पूरा नाम 'उत्तरांचल खण्ड चाय विकास परियोजना, चाय बागान नर्सरी (घोड़ाखाल), नैनीताल' है।

यदि आप चाय का वास्तविक स्वाद ही चाहते हैं, तो उक्त पते पर सम्पर्क स्थापित कर के चाय मँगवा सकते हैं। वैसे यह चाय बाज़ार में सप्लाई होती है, मगर हमारी तरफ़ राजस्थान नहीं आ पाती है। सम्भव है वहीं आस-पास के इलाक़ों में इस की खपत हो जाती होगी। वैसे यह चाय हमारे पास अभी भी है, क्योंकि कभी-कभार ही पीते हैं एवं खास मित्रों को पिलाते हैं। आप भी आइए, स्वागत है। वहाँ से कुछ चाय के बीज भी हम लाए हैं, रखे हुए हैं, उन्हें उगाने का प्रयास अभी नहीं किया है। वैसे वे उगेंगे भी नहीं क्योंकि यह तो पहाड़ी खेती है, मैदान में कैसे होगी?



ऐसा होता तो क्या यहाँ के रईस अभी तक बड़े-बड़े चाय एस्टेट नहीं बना डालते। फिर भी प्रयास करेंगे। मैनेजर साहब से विदा ले कर हम बाहर सड़क पर टैंक्सी तक आए। पंकज बाबू बड़े खुश नज़र आ रहे थे। उन्हें स्वयं पर गर्व महसूस हो रहा हो जैसे। उन की पहचान से हम लोगों की हुई विशेष आवश्यकता के कारण, शायद। कुछ देर सड़क पर टहल कर कुदरत का नज़ारा करते रहे। पंकज जी बोले, कहिए कैसा लगा? आप खुश तो हैं ना...मैं आप को नैनीताल की वो जगह दिखा रहा हूँ, जिसे कोई नहीं दिखाता। हम ने मुस्कुराते हुए उन की हाँ में हाँ मिलाई कि हम वाकई बहुत खुश हैं। सब कुछ बड़ा अच्छा लग रहा है। वो यह सब कहते जा रहे थे एवं गाड़ी भी साफ़ करते रहे थे, तभी एक दो टैंक्सियाँ वहाँ आ कर रुकीं। उन में से जो ड्राइवर निकले, एक पंकज जी को देख कर बोला कि 'यार ज़ियादा गाड़ी मत पौछ, गाड़ी का रंग उड़ जाएगा।' इस पर पंकज जी बोले- 'यार उड़ने दे, रंग तो होते ही उड़ने के लिए हैं। उड़ेगा तभी तो दुबारा होगा।' यह कहते हुए पंकज जी ने गाड़ी स्टार्ट की एवं हम लोगों का कारवाँ रामगढ़ की ओर खाना हुआ, जहाँ फलों के बगीचे हैं। लेकिन इस समय पेड़ हैं, फल नहीं, क्यों कि सेब एवं अन्य पहाड़ी फल मई में ही पक चुके होते हैं। उस समय तो हमारे यहाँ के आमों की तरह पहाड़ों पर तो सेब लटके होते हैं, बस तोड़ी और खा लो। इस समय तो केवल झाड़ियाँ ही रह जाती हैं। लेकिन क्या करें, पेड़ ही देखें कि सेब के, आड़ू के, बुलम, खूबानी के पेड़ ऐसे होते हैं भई। यह मार्ग भी बेहद खूबसूरत है।

## गागर

इस सुरम्य रास्ते से हो कर हम 'गागर' पहुँचे, जो रामगढ़ से कुछ पहले है। यह 2300 मीटर ऊँचाई पर है। कहते हैं कि ऋषि गर्गाचार्य ने यहाँ तपस्या की थी, इसी लिए इस स्थल का नाम गर्गाचार्य हुआ, जो बाद में बोलते-बोलते, काम में आते-आते लोकभाषा में 'गागर' हो गया। यहाँ पर गर्गेश्वर शंकर भगवान का मन्दिर भी है। यहाँ उतर कर हम चारों ओर के मंज़र का अवलोकन करने लगे, अरे, यह क्या? यहाँ से तो दुग्ध-धवल हिमालय और करीब आ गया। बहुत ही दिव्य, बहुत ही अलौकिक दृश्य...मन होता कि हाथ बढ़ा कर छू लें। आज हिम से शायद बादलों की किसी बात पर लड़ाई हो जाने के कारण मानो, कुट्टी हो गई हो। क्यों कि दो-तीन दिन बाद, आज इन से दूर-दूर तक बादलों का नामो-निशान तक नहीं। बिल्कुल श्वेत स्फटिक पर्वत मालाएँ एक बार फिर हिमालय हमारे सामने था। जी भर कर देखा, इन हिमशिखरों को। गागर का प्रमुख आकर्षण यही है।

## मल्ला रामगढ़

यहाँ से पुनः खाना हुए और मात्र 3 किमी. दूर, कुछ ही देर में हम आ गए 'मल्ला रामगढ़' जी हाँ, वही रामगढ़, जो फलों के लिए पूरे देश में विख्यात है और यहाँ हिमालय के अप्रतिम सौन्दर्य के तो कहने ही क्या। जहाँ तक नज़र जाती वहाँ तक विस्तार है इस स्थल का। सारी

पर्वत शृंखलाएँ फलों के पेड़ों से भरी पड़ी हैं। बड़े ही सुनियोजित तरीके से यह बाग़ मेण्टेन किया हुआ है। हम लोग नीचे उतर कर घाटी तक गए जहाँ सेब के पेड़ थे। बस, मलाल यही कि एक भी सेब डाली पर नहीं था, मात्र पत्ते ही शेष थे। उन्हें ही छू कर देखा और कल्पना की कि जब इन में सेब लगे होते होंगे तब कैसा लगता होगा। कवि हैं भई, कई काम कल्पना से ही चलाने पड़ते हैं। इन पेड़ों से सट कर बारी-बारी से सब ने फोटो खिंचवाए ताकि घर आ कर मित्रों पर रुआब जमा सकें कि देखो सेब के पेड़ ऐसे होते हैं। इतना विशाल उद्यान कि किधर जाएँ, किधर नहीं जाएँ। कुछ और नीचे घाटी में तरह-तरह के फूलों के पौधे भी लगे थे, जिन में बेहद खूबसूरत फूल खिले हुए थे। हम वहाँ जाना भी चाह रहे थे, लेकिन वो स्थल काफी दूर था, लगने में लगता है कि यहीं तो है, मगर ऐसा नहीं होता पहाड़ी इलाकों में। हम मैदान वालों को इस का अनुमान नहीं होता। सब ने मना कर दिया तो फिर जाने का सवाल ही कहाँ उठता है। वहीं आस-पास घूमते रहे, दूर के दृश्यों का भी वहीं से आनन्द लेते रहे। आप को एक बात बता ही देते हैं, वैसे इस पूरे उद्यान में घूमने की अनुमति है भी नहीं। कुछ सीमित दूरी तक ही सैलानी जा सकते हैं, क्योंकि यह निजी सम्पत्ति है, माधवराज सिंधिया की। उन का बाग़ है ये, ऐसा पंकज जी ने बताया, फलों का मुआमला है और फिर लोगों को तो आप जानते ही हैं, जिस काम के लिए मना करो उसे ज़रूर करते हैं, यह मानव स्वभाव है। फलों को तोड़े या छुए बिना कोई मानेगा तो नहीं और ऐसा होता रहे तो बाग़ बचेगा भी नहीं, सब कुछ चौपट...। पंकज जी ने वहीं आस-पास लगे पेड़ों में से हमें बताया कि यह पेड़ अमुक फल का है, यह अमुक का। कई फलों के दुर्लभ पेड़ भी बताए। फलों के साथ-साथ देवदार सहित अन्य पहाड़ी पेड़ों की खूबसूरती भी ग़ज़ब ढा रही थी। एक तो सुहाना मौसम, ऊपर से नीलिमा लिए हरियाली, उस पर सूर्य-रश्मियों की पड़ती आभा, भला कौन दीवाना नहीं हो जाए इस प्रकृति का। एक हवा का झोंका आता और सारे पत्ते एक साथ चाँदी के हो जाते, दमक उठते, आँखों में चकाचौंध भर देते। वाह, क्या दृश्य था। वाह रे प्रकृति माँ, तेरी खूबसूरती का भी कोई छोर नहीं, आदमी को छोड़ कर।

कवयित्री महादेवी वर्मा यँ ही कुछ वर्षों तक यहाँ रहीं और यहाँ का बेमिसाल सौन्दर्य उन के ज़ह्न पर इस क़दर छा गया कि उन्होंने यहीं पहाड़ी पर अपना घर बनवाया और वर्षों तक यहीं निवास किया। ज़रूर उन की अप्रतिम काव्य-साधना में इस सौन्दर्य का विशिष्ट योगदान रहा होगा। उन की रहस्यवादी एवं आध्यात्मिक कविताओं में प्रकृति ही तो मूल प्रेरक है, और फिर इस से ज़ियादा अद्वितीय सुन्दरता उन्हें कहाँ मिली होगी। महादेवी वर्मा ही क्या, चाचा नेहरू, रवीन्द्रनाथ टैगोर, आचार्य नरेन्द्र देव भी तो रामगढ़ आ कर सम्मोहित हो गए थे। गुरुदेव रवीन्द्रनाथ यहाँ आए तो हिमालय को देख कर इस दिव्य प्रकृति का रसास्वादन करते रहे यथा 'गीताञ्जलि' एवं 'सान्ध्य' संगीत की सर्जना भी यहीं की। गीताञ्जलि विश्व प्रसिद्ध साहित्यिक कृति है, जिसे नोबेल पुरस्कार से नवाज़ा गया है। इस की कविताएँ प्रकृति व अज्ञात को ही तो सम्बोधित हैं। ऐसे स्थानों पर ऐसा रचना कर्म होगा ही होगा। वातावरण का प्रभाव भला कहाँ जाएगा। यहाँ की पर्वत चोटी पर एक बँगला है, जिस में वो ठहरे थे, इस लिए उस का नाम ही 'टैगोर टॉप' पड़ चुका है। यह भी कहा जाता कि आचार्य नरेन्द्र देव ने भी इस विराट सौन्दर्य का पान किया एवं अपने ग्रन्थ 'बौद्ध दर्शन' को यहीं पूरा किया और चाचा नेहरू तो प्रकृति के वैसे ही दीवाने थे, तभी तो सदैव गुलाब को अपने सीने से लगाए रखते थे। वो भी मुग्ध थे रामगढ़ पर।

चलिए अब रामगढ़ की थोड़ी-सी भौगोलिक जानकारी भी लें ही लें। हाँ, तो जनाब यह प्यारी-सी जगह गागर से 3 किमी. दूर तो है ही, साथ ही सागर तल से 1,789 मीटर ऊपर है एवं नैनीताल से मात्र 25 किमी. दूर है। यहाँ फलों की बहार तो है ही, बर्फ पड़ने के बाद सब से पहले ग्रीन सेब यहीं पकता है। इस बात पर याद आया कि मनाली में एक महाशय ने बताया था कि जितना ज़ियादा बर्फ पड़ता है उतने ही अच्छी सेबों की खेती होती है। ज़ाहिर है, जहाँ हरे सेबों की बात है, बहुत ही स्वादिष्ट होते हैं। सेब, जो हम मैदान में खाते हैं, उन से एकदम भिन्न होते हैं। उन का तो स्वाद एवं प्लेवर ही अलग होता है और यहाँ के अलग ही लगते हैं। इतने अच्छे लगते हैं कि बस, खाते जाओ, खाते जाओ, जब कि हम से सेब ज़ियादा खाए ही नहीं जाते, जो हमारे यहाँ मिलते हैं। वैसे भी फल ताज़ा ही अच्छे लगते हैं, लेकिन अब फल कई दिनों, महीनों के रखे हुए नसीब होते हैं। डाल से टूटे हुए फल तो अब सपने की बात हो गई। लोभ-लालच में व जल्दबाज़ी में मालिक कच्चे फलों को तोड़ कर रसायन से पकाते हैं, ऐसे में स्वाभाविक स्वाद व गुणों की तो कल्पना ही बेमानी हो कर रह गई है। सब कुछ बासी एवं ज़हरीला। सच बात तो यह है कि अब तो फल भी खाने का धर्म नहीं रहा, क्योंकि उन के साथ रसायनों का ज़हर भी पचाना पड़ता है। हाँ, बालपन में ज़रूर गाँव में खाए हैं, डाली से तोड़-तोड़ कर फल, क्या स्वाद होता था, ऐसा कि मन ही नहीं भरता, पूछिए ही मता। बिल्कुल अलग, अस्त स्वाद एवं महक जिसे आज के बच्चे कभी जान ही नहीं सकेंगे, न चख सकेंगे।

अब तो हाल ये है कि क्या खाएं और क्या नहीं खाएं? सोचने बैठें तो एक भी चीज़ निरापद नज़र नहीं आएगी। जब हवा-पानी ही क्या सम्पूर्ण पर्यावरण ही विषमय हो चुका हो तब फल, सब्ज़ी या दूध क्या चीज़ है? आदमी की अक्ल एवं लालच का फल है सब। अब तो हाल ये है कि इंजेक्शन द्वारा फलों व सब्जियों को रातों-रात छोटे से बड़ा कर लिया जाता है, मुरझाए फलों को रसायन में डाल कर तरो-ताज़ा करना विक्रेताओं के बाएँ हाथ का खेल है। सेहत के साथ इतना बड़ा खिलवाड़...? प्रशासन भी कुछ नहीं कर पाता।

हमारे यहाँ क़ानून है, मगर सज़ा नहीं हो पाती, क्योंकि भ्रष्टाचार चरम पर है। अपराधी आराम से बच कर निकल जाता है, इस लिए बेधड़क हो कर यह सारा खेल खेला जा रहा है। सच पूछो तो कभी अमृत-पुत्र कहलाने वाला मानव अब विष-पुत्र बन चुका है। सम्भव है अब उसे शुद्ध पथ्य हज़म ही न हो। रात-दिन ज़हर खाते रहने से शरीर भी तो वैसा ही होता जाता है। विष कन्याएँ ऐसे ही बनती हैं। वाह रे, मनुष्य क्या कमाल कर लिया तू ने! आज-कल रसायनों से पके फल खाने का मन नहीं करता। बाज़ार में देखते हैं, खाने चाहिएं, इस लिए खा लेते हैं। फिर माँ-बाप कहते हैं, बच्चे फल नहीं खाते। खाएंगे भी कैसे? दूध में ऑक्सीटॉनिन इंजेक्शन का विष, फलों में भी विषैले रसायन, ऊपर से कीटनाशकों का ज़हर। अच्छा करते हैं, जो नहीं खाते। कुछ खाने-पीने का मन भी तो हो, तब ही खाएंगे। बच्चे सहज होते हैं, जो चीज़ उन्हें अच्छी नहीं लगती, वे नहीं खाते। लाइए, स्वाभाविक ढंग से निकाला गया शुद्ध दूध, डाल पर पके फल, देखें कैसे नहीं खाते? दुश्मन तो हम बन रहे हैं इन के। हाँ, गाँवों में हम ने आमों को ज़रूर पकाते देखा है, वो भी इस लिए कि डाली पर पकने से पहले जो कैरियाँ हवा से गिर जाती थीं, उन्हें पलाश के पत्तों एवं भुस में दबा कर उन पर बिस्तर यानी गोदड़े डाल दिए जाते थे। ऐसे पकते थे पहले आम। हम खुद कैरियों को अनाज की बोरी में रख कर पकाते थे बचपन में, चोरी छिपे दादी

जी, दादा जी से। वो भी अच्छे लगते थे। कहा ना, नैसर्गिकता ज़रूरी है। आदमी ने बुद्धि का प्रयोग किया, कई खोजें कीं, मगर उन का दुरुपयोग कर के खुद ही खुद का दुश्मन बन बैठा। दूध का अस्ल स्वाद इन बच्चों को चखा दीजिए, खाना छोड़ कर दूध की ही ज़िद करने लगेंगे। इसी बात पर अपनी ही कविता याद आ रही है, आप भी पढ़िए कविता का एक अंश-

“हैं अभी छोटे ये बच्चे  
कि ले कर चीज़  
हो जाते हैं खुश ये  
पर/ कल जब ये होंगे कुछ बड़े  
और आते ही स्कूल से  
माँगेंगे हम से पूरा जंगल  
कोई खाती टुकड़ा धरती का  
करेंगे हठ/ हमें परबत ही ला कर दो  
कभी रोएंगे  
‘हम को पेड़ दिखलाने चलो’  
तब हमारे पास  
बगलें झाँकने ही के अलावा  
चारा क्या होगा?  
अभी भी है समय देखो  
अभी छोटे हैं ये बच्चे  
ढूँढ़ सकते हैं विकल्प इस का/ अभी तो हम  
पहाड़ों के हँसी पावों में  
रुनझुन घुँघरुओं की बाँध सकते हैं  
हवाओं को सुगन्धें बाँट सकते हैं  
बना रख सकते हैं  
आकाश को नीला...”

ओ...फफो...! बातों ही बातों में काफ़ी लम्बी बातें हो गईं। ग़लत बातों पर हमें बड़ा दुख होता है, सो कहना आ जाता है। मुआफ़ कीजिएगा। वापस रामगढ़ की ही बात करते हैं। जैसा कि हम ने पहले बताया था, यहाँ पर कई तरह के सेब, जैसे गोल्डन किंग, फैनी, डिलीशियस जोनाथन आदि के पेड़ हैं, वहीं गौला, तोतापरी, हिल्सबर्नी आदि क़िरमों के आडू भी यहाँ विशेष हैं। यूँ कहिए यह यहाँ का सब से श्रेष्ठ फल है। कई क़िरमों के पुलाम, ख़ूबानियों के अलावा कई प्रकार के अन्य फलों की खेती यहाँ होती है, जैसे- पाम, पिच, प्रिकेट आदि। लेकिन अभी सारे के सारे पेड़ निष्फल खड़े थे, बिलकुल निष्काम कर्मयोगी की तरह, बस कर्म करो, फल की आशा से कोई लेना न देना। काश! ये फलों से लदे होते तो यहाँ की ख़ूबसूरती में चार चाँद लग जाते। बाग़ान ही फलों के हों और एक भी फल न हो...सूना तो लगेगा ही। हम ने मन ही मन निश्चय कर लिया कि एक बार फिर सीजन में जरूर आएंगे। प्रकृति की लीला भी अपरम्पार है। हर कार्य समय पर ही होता है। मजाल क्या कि सूरज अपने वक़्त से एक पल भी विलम्ब से निकले। कितना अनुशासन है

सम्पूर्ण प्रकृति में, इसी लिए प्यारी है। और हम आदमी हैं कि एक भी काम समय पर नहीं करते। कम से कम इस से ही सीख ले लें, समय की कीमत नहीं पहचानने के कारण ही हम लोग इतने दुखों व तनावों के शिकार हैं। एक-एक क्षण का मोल जान लें तो यह जीवन कितना बहतर हो सकता है, कभी सोचा हम ने...? नहीं...। यह सोचने के लिए भी हमारे पास वक्त कहाँ है। अधिकतर समय तो बेकार कामों की भेंट चढ़ जाता है। वाकई जिस दिन प्रकृति अपना अनुशासन तोड़ देगी, प्रलय हो जाएगा। आदमी है कि इस के अनुशासन को भंग करने में कोई कसर नहीं छोड़ रहा, जिस के दुश्फल शनैः शनैः सामने आ रहे हैं। वो तो अपना और प्रकृति का जानी दुश्मन बन बैठा है। इस का विनाश करने पर तुला बैठा है। ईश्वर इसे सद्बुद्धि प्रदान करे, देर से ही सही, उसे यह मर्म समझ में आ जाए और प्रकृति-पुरुष दोनों ही सुकून से रह सकें।

इसी गहन चिन्तन से हम बाहर निकले और देवदार के सुन्दर पेड़ों को देख कर निहाल होने लगे। जहाँ ये पेड़ थे, वहाँ की पृष्ठ-भूमि बहुत सुन्दर लग रही थी, फोटो खिंचवाए बिना मन नहीं माना। बाद में कुछ देर इन के नीचे सुकून से बैठे, बैग में कुछ बिस्किट व मूँगफली रखी थी, सब ने मिल कर खाई। यहाँ तो इन का स्वाद ही अलग आया, यही चीज़ें घर पर इतनी अच्छी कहाँ लगती हैं? मन और वातावरण अच्छा हो तो सब-कुछ अच्छा लगता है। मन ही केन्द्र है अच्छे-बुरे का। मन कहे तो अच्छा, मन कहे तो बुरा, यही सच है। कुछ देर मटरगस्ती कर के रामगढ़ को 'बाय' कर के ऊपर सड़क पर आए, जहाँ रामगढ़ लिखा था। हम बार-बार सोचते रहे कि रामगढ़ के आगे 'मल्ला' क्यों लिखा था। बाद में एक पुस्तक में पढ़ा कि रामगढ़ दो हैं। एक रामगढ़ और है, जो यहाँ से 10 किमी. दूर है। यहाँ से मुक्तेश्वर 25 किमी. दूर है। वहाँ जाने के लिए ही तो हम आए हैं। 'जनसत्ता' में इस के सुहानेपन की इतनी तारीफ़ पढ़ी कि वहाँ जाने का मानस हम घर से ही बना कर आए थे।

हम ने पंकज जी से मुक्तेश्वर जाने के लिए कहा तो टालमटोल करने लगे। कहने लगे कि यहाँ से 25 किमी. दूर है। आने-जाने में शाम हो जाएगी। इतने समय में तो आप को अन्य स्थल दिखा दूँगा और फिर मुक्तेश्वर में अभी जाने से कुछ लाभ नहीं मिलेगा, क्यों कि वहाँ भी फलों के बाग़ान हैं, जो अभी फल हीन हैं। वो लुप्त वहाँ भी नहीं आएगा। जहाँ के लिए हम चले थे, वहीं तक नहीं जा पा रहे थे। यात्रा के दौरान हम ने यह ख़ूब अनुभव किया कि मज़दूर हो या ड्राइवर, या अन्य, ये लोग अपनी बात मनवाना सामने वाले को बेवकूफ़ बनाना, उस की मानसिकता बदलना, उल्टे-सीधे तर्क दे कर गुमराह करना, बख़ूबी जानते हैं। कुछ इस ढंग से बातें बनाते हैं कि सामने वाला न चाहते हुए भी मानने को तैयार हो जाए। जो काम ये नहीं करना चाहते, उस के लिए कई कुतर्क दे कर उपभोक्ताओं को गुमराह करना इन के बाएँ हाथ का खेल है। अभी हमारे मकान का निर्माण कार्य चल रहा है, अतः ताज़ा-ताज़ा अनुभव है। हम ने महसूस किया कि सब से मुश्किल काम है, दूसरों से अपने मुआफ़िक़ काम करवाना। आखिरश, पंकज जी ने अपनी ही बात मनवाई, हम खुल कर नहीं बोल पाए, जब कि वहाँ जाने की हमारी तीव्र इच्छा थी, पता नहीं क्यों हम बेहिचक अपनी बात नहीं कह पाते। के.पी.जी बार-बार पूछते रहे, चलना है तो कहो? फिर कोटा पहुँच कर शिकायत मत करना। लेकिन ये सब हमारा मन रखने के लिए ही कहा जा रहा था। जाना तो वो भी नहीं चाह रहे थे। बस इस लिए हम चुप रहते हैं, क्यों कि साथ वालों की अनिच्छा देख कर अपने मन को समझा लेते हैं। अभी मात्र सवा बजा है। हमारे पास पूरा दिन है।

सो हिम्मत कर के रास्ते में गाड़ी ज़रूर रुकवाई। हम दोनों (स्वप्निल व हम) उतर कर पहाड़ी रास्तों पर टहलने लगे। इन रास्तों पर चहलकदमी की सदैव इच्छा रही है। सड़क पर इधर-उधर घूमने लगे, चारों ओर की खूबसूरती का पान करने लगे। बस, मज़ा आ गया...। क्या कहने? फिर हम दोनों पहाड़ी पर चढ़ने लगे। यहाँ चारों ओर सघन वन थे वो भी मात्र चीड़ के। पहाड़ों पर उन से गिरे पत्तों व उन के तिनकों की बड़ी मोटी परत जमी हुई थी। इतनी कि पैर फिसल-फिसल जा रहे थे। चढ़ पाना बिल्कुल मुश्किल हो रहा था। एक-दूसरे का हाथ पकड़-पकड़ कर चढ़ रहे थे। कुछ दूरी पर तो चप्पलें खोलनी ही पड़ीं, तब जा कर चढ़ पाए। वहाँ पर बड़ी सुन्दर-सुन्दर पतियों वाले पौधे उगे हुए थे। ऐसा लगा कि उन्हें तोड़ कर घर में सजा लिया जाए। हमारे पीछे-पीछे ये दोनों भी हो लिए। आकाश छूते पेड़, बीच-बीच में उन के छोटे-छोटे बच्चे बड़े अच्छे लग रहे थे। हम गिरते-पड़ते चढ़ते गए, चढ़ते गए, काफ़ी ऊँचाई तक। बीच-बीच में पत्तों में से छन-छन कर आती हुई, बिखरी हुई धूप, जैसे पहाड़ों पर धूप के मॉडने मँडे हों, जो बड़े ही प्यारे लग रहे थे। शीतल बयार वो भी पहाड़ी महक से शराबोर, पोर-पोर को सुरभित किए जा रही थी। वाह! क्या अद्भुत दृश्य था, वाह री कुदरत।

थोड़ी दूर जा कर हम एक मज़बूत टहनी पर बैठ गए। कुछ ऊँचाई तक तो पंकज जी भी पीछे-पीछे आते गए। वो भी यह लोभ सँवरण नहीं कर पाए। वहाँ एक विशेष बात नज़र आई कि पेड़ के तने बीच-बीच में जले हुए थे। हम ने पंकज जी से इस का कारण पूछा तो वे बोले कि इन्हें जला कर लिचपिचा भूरे रंग का पदार्थ निकाला जाता है, जिस से तारपीन का तेल बनाया जाता है। हमें नई जानकारी पा कर सुखद आश्चर्य हुआ। ये तो मालूम पड़ा कि चीड़ से तारपीन का तेल बनता है। अभी-अभी 'मसि कागज'-03 के अंक में पढ़ा है कि ज्ञान प्राप्ति के लिए साधन हैं, भ्रमण, श्रवण और पठन। इन में भी पण्डित राहुल सांकृत्यायन जो स्वयं उत्त्व कोटि के घुमवकड़ विद्वान थे, ने भ्रमण को सर्वश्रेष्ठ माना है, ये लिखा है पत्रिका के सम्पादक डॉ. श्याम सखा 'श्याम' ने, जो एकदम सत्य हैं। जो कुछ हम देखेंगे महसूस करेंगे, भोगेंगे, वही हम सब से ज़ियादा जान सकेंगे। ताजमहल खूबसूरत है, यह हम ने सुना, पढ़ा, ठीक है! है सुन्दर। लेकिन जब हम इसे देखेंगे तब जो अहसास होगा वह पढ़ने-सुनने से कदापि नहीं हो सकता। भ्रमण का आनन्द तो भ्रमण का ही है जनाब, जानकारियों का खज़ाना। मन तो करता है कि वर्ष में कम से कम दो बार भ्रमण को जाएं ही जाएं।

चलिए, जानकारी तो हो गई, अब स्नेप लेते हैं। इतनी सुन्दर जगह और फोटो न लें तो ये क्या बात हुई? ये स्नेप ही तो हमेशा नैनीताल की याद दिलाएंगे। अभी जब भी मन होता है, एलबम खोल कर यादें ताज़ा कर लेते हैं। एक मज़बूत-सी टहनी पर हम बैठ गए और इसी पोज़ में फोटो खिंचवाए, फिर सबने पेड़ के सहारे खड़े होकर तो किसी ने अन्य पोज़ में फोटो खिंचवाए। अब वापसी का नम्बर था। होगा आप ने भी कि चढ़ाई से उतराई मुश्किल होती है। पैर इस क़दर फिसल रहे थे कि बैठ-बैठ कर, फिसल-फिसल कर उतरना पड़ा। चप्पलें तो कभी की फिसल कर काफ़ी नीचे जा चुकी थीं। तभी 'यकीन' जी ने कहा कि चीड़ के सूखे फल ढूँढ कर ले चलिए। ऐसा कहा जाता है कि पूजा-घर में इन्हें रखने से सब शुभ होता है, समृद्धि व सुख आता है। उन्होंने कहा कि बचपन में अपने घर में देखा था मैं ने चीड़ का फल। इस से हमारे घर में समृद्धि रही, ऐसा मेरी माँ व पिताजी कहते हैं। हम ने कहा, ये तो बड़ी अच्छी बात है। जब हम चीड़ के वनों में हैं तो

वयों न उन के फल ढूँढ ही लें। हम ने काफ़ी कोशिश की ते एक खण्डित फल मिला। पंकज जी भी इस मुहिम में शामिल हो गए। इधर-उधर पहाड़ी पर घूम कर एक साबुत फल ले आए। एक 'यकीन' जी को मिल गया। बस, हो गया हमारा काम। बड़े आश्वस्त हुए हम।

नीचे आ कर वही सुन्दर पाम जैसी पतियों वाला पौधा ढूँढने लगे। हमें ऐसा लगा कि इस की पतियाँ ऊटी के फूलों की तरह वर्ष भर हरी रह सकती हैं। पंकज जी ने भी हमारा समर्थन किया और पहाड़ी पर से कई पतियाँ चुन लाए एवं उन्हें डोरी से बाँध कर गाड़ी में रख दिया। हम उन के आभारी हो गए। 2-3 दिन उन के साथ घूमने से हम लोगों में परस्पर काफ़ी आत्मीयता हो चुकी थी। अपनापन-सा लगने लगा था। इस बीच, यानी इन दो-तीन दिनों में उन्होंने कई पर्यटकों के दिलचस्प किस्से भी हमें सुनाए। यहाँ एक और दिलचस्प बात हुई। हमें रास्ते में घूमते हुए देख कर एक कार हमारे पास आ कर ठहर गई। वे लोग भी कार से उतर कर पहाड़ी सौन्दर्य का अवलोकन करने लगे। इस में दो महिलाएँ, दो पुरुष एवं दो बच्चे थे। उस गाड़ी का ड्राइवर पंकज जी का परिचित निकला, दोनों में कुछ बातें हुई। हमारे रास्ते में ठहरने का कारण पंकज जी ने उन्हें बता दिया। वे लोग पहाड़ी पर बन्दरों की तरह उछल-कूद करने लगे। उन की किलकारियों से वादियाँ गूँज उठीं। तब हमें प्रकृति व बच्चे एक से निश्छल लगे। बच्चे भी तो प्रकृति की ही तरह निर्मल, निश्छल, खूबसूरत और मासूम होते हैं। अभी हमारे सामने प्रकृति के बिन्दास सौन्दर्य की बेशुमार दौलत बिखरी हुई थी।

पंकज जी ने गाड़ी का हॉर्न बजाया और हम गाड़ी में सवार हो कर डामर की गहरे भूरे रंग की पगडण्डी पर दौड़ने लगे। 'ये हरियाली और ये रास्ता' गीत अनायास ही याद आ गया-

“ये हरियाली और ये रास्ता  
इन राहों से  
तेरा-मेरा  
जीवन भर का वास्ता  
ये हरियाली और ये रास्ता...।”

## नकुचिया ताल

इन्हीं हरी-भरी वादियों से गुज़रते हुए पंकज जी ने इशारे से कहा कि यह 'रानी बाग' है। यहाँ एच.एम.टी. घड़ी की फैक्ट्री है। वलिये घडियों की फैक्ट्री भी देखी। वो भी पहाड़ों में। हम तो यही सोचते थे कि फैक्ट्रियाँ तो मैदान में ही होती होंगी, पहाड़ों में भला इन का क्या काम, लेकिन हम भूल गए कि यहाँ पठार भी तो होता है। जहाँ यह सब सम्भव है, लेकिन पहाड़ों को तो कारखानों से बचाया जाना चाहिए। कम से कम इन्हें तो प्रदूषण से मुक्त रखने में क्या हरज है। कोई तो जगह हो जहाँ आदमी शुद्धता का सेवन कर सके। आगे ड्राइवर साहब ने कहा कि घडियों की फैक्ट्री नैनीताल में भी थी, मगर बेईमानी व धाँधली के कारण बन्द हो गई। बातों ही बातों में हम

नकुचिया ताल पहुँच गए और पता भी नहीं चला। उतर कर हम लोगों ने पहले ताल तक जा कर उस का अवलोकन किया। ताल के दूसरी ओर पहाड़ी पर गेस्ट हाउस बने हुए थे, जहाँ पर नौका से ही जाया जा सकता था। थोड़ी सी तपरीह कर के हम वापस गाड़ी तक आए। सुबह से खाना नहीं खाया था, उस की व्यवस्था करनी थी। पंकज जी ने पास ही पहाड़ी पर बने छोटे से ढाबे की ओर इशारा करते हुए कहा कि यहाँ खाना खाया जा सकता है, ऑर्डर देने के बाद आधे घण्टे में गर्मागर्म भोजन तैयार हो जाएगा। तभी हमें ध्यान आया कि इन्होंने भी तो खाना नहीं खाया, सुबह से हमारे साथ ही तो घूम रहे हैं। अतः हम ने उन से पूछा कि आप के लंच का क्या होगा। हँस कर बोले आप को मेरी फ़िक्र है, बड़ा अच्छा लग रहा है, यह जान कर आप को दिल से धन्यवाद। वरना कोई भी पर्यटक गाड़ी वाले के भोजन की विन्ता नहीं करता। आज पहली बार आप ने ऐसी अच्छी बात की है। वाकई आप बड़ी संवेदनशील व सरल हृदया हैं। लेकिन आप को एक बात बताऊँ कि सुबह तो मैं नाश्ता कर आता हूँ और लंच साथ में ले कर आता हूँ। जब भूख लगती है, गाड़ी में खा लेता हूँ। हमारा तो यह योज़ाना का ही काम है। अब योज़-योज़ होटल का खाना सेहत के लिए अच्छा नहीं होता और महँगा भी पड़ता है। वैसे आज तो मैं ने भी अभी तक खाना नहीं खाया। आप ढाबे पर चलिए, आप वहाँ खाएंगे तो मैं भी आप के साथ ही लंच कर लूँगा, अच्छा लगेगा। हम ने हाँ की मुद्रा में सर हिलाया और पहाड़ी पर ढाबे में आ गए। भोजन की जानकारी ली। दाल-रोटी, तरकारी, पकौड़े सब बना देते हैं ये लोग। वैसे आज मंगलवार है, हमारा व्रत है, हम ने 'यकीन' जी से कहा। वे बोले, कोई बात नहीं व्रत खोलने का समय तो हो ही गया, दे दो सब के लिए ऑर्डर। सो, स्वप्निल की पसन्द से पकौड़े सहित ऑर्डर बुक करवा दिया और ये दोनों वहीं लगी कुर्सियों पर बैठ कर आराम करने लगे। पहाड़ी पर बड़ी ही सुन्दर नर्सरी लगी हुई थी। हम माता-पुत्री इस का अवलोकन करने लगे। कई नई फ़िरमों के पौधे यहाँ देखने को मिले। छोटे-छोटे नीबू के पेड़ों पर बड़े-बड़े पहाड़ी नीबू लगे हुए थे। तोड़ेंगे तो चोरी कहलाएंगी। वैसे ऐसी नटखट चोरियाँ चोरी की श्रेणी में नहीं होनी चाहिएँ। जब खाने का मन है तो तोड़ कर खा लो। प्रकृति है ही सब के लिए। लेकिन निजी सम्पत्ति से सारी प्रकृति का लुत्फ़ नहीं उठाया जा सकता। जहाँ तक ग़लत काम का प्रश्न है, तो ऐसी बात कभी मन में आती ही नहीं। ऐसे संस्कार ही नहीं हैं, हमारे। पूछ कर ज़रूर तोड़ सकते थे। तभी स्वप्निल चहकी मम्मी-मम्मी, देखो दो नीबू वो नीचे पड़े हुए हैं। इन्हें तो हम ले ही सकते हैं। फिर भी हम ने तो इन्कार ही किया, लेकिन बचपन ऐसी छोटी-मोटी बात मान ले तो बचपन ही क्या? उस ने तो उठा लिए। ऐसा कर के खुश होते हुए बोली, इन्हें कोटा ले चलना, भैया को खिलाऊँगी। मतलब वहाँ उस पर रौब झाड़ेगी कि देख हम ने क्या-क्या नहीं देखा वहाँ। हम उस की बाल सुलभ चंचलता व भोलेपन को देख कर इन्कार नहीं कर सके।

शनैः शनैः हम ने पूरी नर्सरी का बाकायदा निरीक्षण किया। बहुत ही प्यारे व नए-नए पौधे व फूल लगे हुए थे। एक छोटे से पेड़ पर चेरी जैसा फल नज़र आया। तोड़ना चाहा मगर नहीं तोड़ा, बाद में नीचे आ कर मालूम चला कि है तो वह चेरी ही, मगर नक्ली है। खाने वाली नहीं। देखा आप ने कभी-कभी संस्कार भी हमारी सुरक्षा करते हैं। हम चोरी कर के तोड़ कर खा लेते तो क्या होता? हाँ, कोई भी नई चीज़ खाने के पूर्व उस की विश्वसनीयता एवं निरापद होने की जाँच ज़रूरी है। कुछ देर बाद हम नीचे आ कर सामने नकुचिया ताल का अवलोकन करने लगे। इस का कुछ



हिस्सा सूखा हुआ था। आप सोच रहे होंगे इसे नकुचिया ताल क्यों कहते हैं। यही सवाल हमारे मन में 2-3 दिन से आ रहा था, जब से इस का नाम सुना था। इस के नौ कोने होने के कारण इस का नाम नकुचिया ताल पड़ा है, ऐसा पंकज जी ने बताया, साथ में यह भी कहा कि कोई भी व्यक्ति एक साथ इस के नौ कोनों को नहीं देख सकता चाहे हेलीकॉप्टर से ही क्यों न कोशिश करे। यही इस ताल की विशेषता है। एक साथ नहीं देख पाने का कारण है, कोनों का काफी टेढ़ा-मेढ़ा होना। हाँ, सात कोने ज़रूर एक साथ देखे जा सकते हैं। हम ने सोचा, यह प्रकृति का अपना मुआमला है, आदमी दरख्त भी कैसे दे सकता है? हर जगह सम्भव भी नहीं है।

इस ताल में ख़ूब सारे कमल के फूल खिले हुए थे, जो बहुत ही मनभावन लगे, यह यहाँ का विशेष आकर्षण है। फूल तो वैसे भी प्रकृति का बेमिसाल ख़ूबसूरत नज़राना है, आदमी के लिए ऐसी नज़ाकत, ऐसा सौन्दर्य और कहाँ मिलेगा। फूलों में फिर वो भी कमल हों तो कहने ही क्या। हम इसे फूलों का नवाब भी कह सकते हैं, कोई हम से पूछे या हमारी माने तो। लक्ष्मी जी ने अपना आसन सोच-समझ कर ही कमल को बनाया होगा। उन्होंने सुन्दरतम उपादान ही चुना होगा, ज़ाहिर है। ऊपर से जनाब एक और विशेषता काबिले-गौर है कि यह पानी में रह कर भी उस से निस्पृह रहता है। मजाल क्या कि एक बूँद भी इस पर टिकी रह जाए, पानी से एकदम अप्रभावित, वाकई है ना ग़ज़ब की बात। यह तो वो ही बात हो गई कि काजल की कोठरी में रहे और एक भी दाग़ नहीं लगे। जल में भी सूखा, वाह री प्रकृति माँ, तेरे रहस्यों का भी जवाब नहीं। ‘जल में कमलवत रहना’ कहावत इसी लिए इतनी प्रचलित है। कमल की बात पर एक और कहावत याद आ गई कि ‘कमल कीचड़ में खिलता है’ यानी कीचड़ में इतनी ख़ूबसूरत चीज़ भी खिल सकती है। तात्पर्य है कि हर चीज़ की अपनी महत्ता है। कीचड़ इतना हेय भी नहीं है और किसी से उत्पन्न होने का कदापि यह अर्थ नहीं कि वो उस जैसा ही हो। खराब कुल में जन्मे या ग़लत व्यवसाय से जुड़े माता-पिता की सन्तानों को समाज हेय दृष्टि से देखता है, लेकिन ज़रूरी तो नहीं कि ऐसा बालक बुरा ही हो। वह कीचड़ में कमलवत भी हो सकता है।

एक गुण्डे-बदमाश के घर ईमानदार बालक भी जन्म ले सकता है। उसे उस के कुल की सजा देना अन्याय संगत है। लेकिन हमारे समाज में ऐसा ही होता आया है। एक वैश्य की बेटी को कोई भी अपनी वधू नहीं बनाना चाहता। दुःख की बात है कि उस समय हम ‘कीचड़ में कमल’ वाली कहावत भूल जाते हैं। चलिए, अब कमल को यही विराम दे कर इसी ताल की बात करते हैं। यहाँ कई प्रजाति के पक्षी व मछलियाँ हैं, ज़ाहिर है मछलियों का शिकार भी यहाँ होता होगा, होता है। ऐसा हमें ज्ञात हुआ...बेचारे निरीह प्राणी, अब इस बुद्धिमान प्राणी मनुष्य को क्या कहें, जीवों को तड़पा-तड़पा कर मार कर खाने में इसे क्यों इतना आनन्द आता है। काश! हमें एक दिन प्रधान मन्त्री बनने का अवसर मिल जाए तो हम ऐसे तमाम कामों पर तो प्रतिबन्ध लगा ही दें, जो जीवों को सताने वाले होते हैं।

हाँ, यहाँ लगभग 25 पौण्ड तक की मछलियाँ भी मिल जाती हैं। इस ताल की सागर तल से 1219 मीटर ऊँचाई है। यहाँ का पानी हमें गहरा नीला नज़र आया। उस पार पहाड़ी पर सुन्दर इमारत बनी हुई है, हमारी दृष्टि में ज़रूर वह होटल ही होना चाहिए। थोड़ा घूम कर वापस हम रेस्त्राँ आ गए। भोजन तैयार हो चुका है। गरमागरम दाल, सब्ज़ी, चपातियाँ, पकौड़े, बिल्कुल घर

जैसा खाना आनन्द आ गया। वैसे भी जब हम हमेशा स्वयं के हाथों से बनाया हुआ खाना खाते हैं, तब दूसरों के हाथों से बना हुआ भोजन हमें और स्वादिष्ट लगता है। महिलाओं को ऐसा सुनहरा अवसर केवल भ्रमण पर ही मिलता है। जहाँ दिनचर्या की सारी एकरसता खत्म हो जाती है। बस, घूमो-फिरो, खाओ-पिओ, खूब मौज-मस्ती करो, आनन्द ही आनन्द। कुछ दिनों चौके-चूल्हे से निजात मिल जाती है। सब ने बड़े मन से भोजन किया, मेज़बान ने भी बड़े ही प्यार से परोसा। इस भ्रमण में हमारे साथ यह इतिफ़ाक़ ज़रूर हुआ कि ज़ियादातर खाना होटल में ही खाया, यहाँ वाकई घर जैसा खाना मिला। हम सब ने उन्हें खूब धन्यवाद दिया, वो भी हमारे आत्मीय स्पर्श से प्रफुल्लित हो गए। पंकज जी का यहाँ खाने का प्रस्ताव उत्तम रहा। ये लोग खूब जानते हैं कि कहाँ कैसा भोजन मिलेगा और फिर पर्यटकों की रुचि भाँप कर वैसा ही मश्विरा ये लोग देते हैं। इन का यह रोज़ का ही काम जो है। पंकज जी का के.पी. जी ने भी आभार जताया। फिर सब ने वहीं गर्मागर्म कॉफी भी पी। नीचे सड़क पर कुछ फल मिल रहे थे, कुछ अमरूद व केले खरीद लिए और ताल के दूसरे छोर की ओर खाना हुआ।

वहाँ भी सुन्दर-सुन्दर दूकानें लगीं हुई थीं, दो-चार रेस्त्राँ तो थे ही। वैसे इधर आने के लिए पंकज जी से हम ने मना तो किया था कि उधर जा कर क्या करेंगे? ताल तो यहीं से दिखाई दे रहा है, लेकिन वे नहीं माने और इधर ले आए, वाकई इस ओर से ताल का दृश्य और भी खूबसूरत दिखाई दिया। वास्तव में लोकेशन का फ़र्क़ पड़ता है। बहुत देर तक हम लोग किनारे पर खड़े-खड़े सौन्दर्य का रसपान करते रहे, बहुत खूब था यह नज़ारा भी। मन तो नौकायन करने को मचल रहा था, क्योंकि यहाँ पर नौका नहीं शिकारे थे, जैसे कि कश्मीर की डल झील में होते हैं। जैसा कि फ़िल्मों में देखा है। अभी तक कश्मीर जाने का सुअवसर नहीं मिल पाया है।

प्रत्यक्षतः शिकारे यहीं देखने को मिले हैं। किराया पूछा तो ढाई सौ रुपए, अतः हिम्मत नहीं हुई, इच्छा ज़ाहिर करने की। एक बात हमें बार-बार परेशान कर रही थी कि इस किनारे भी एवं उस किनारे भी जहाँ से हम आ रहे हैं, हवाई चप्पलों के अनेक सोल पानी पर तैर रहे थे। इस का कारण हमें जितना समझ में आया, वह यह कि ज़रूर यहीं-कहीं आस-पास इन चप्पलों का कारख़ाना होना चाहिए, हम ग़लत भी हो सकते हैं, पर स्वप्निल और हम ने तो यही अनुमान लगाया, चलिए छोड़िए...इन छोटी-मोटी बेकार की बातों पर ज़ियादा सोचने से लाभ भी क्या? हाँ, इन के जल पर तैरने से पानी प्रदूषित हो रहा था, वो हमें अच्छा नहीं लग रहा था। सो ऐसा विचार आना स्वाभाविक भी है। इतना खूबसूरत ताल और किनारा प्रदूषित। बेचारा प्रशासन भी कहाँ तक ध्यान रखे। राष्ट्र को स्वच्छ रखना तो एक नागरिक का कर्तव्य होता है। हाँ, प्रशासन क़ानून तोड़ने वाले के साथ सख्ती से पेश आए, यह ज़रूरी है।

किनारे से लगे पहाड़ों पर सघन हरीतिमा थी, उन पर चढ़ने का मन भी किया, मगर फ़ैन्सी से रास्ता बन्द किया हुआ था। अतः हम दोनों तो वहीं रेस्त्राँ की छत पर चले गए, जिस की सीढ़ियाँ खुले में थीं। अब क्या करें? महिलाएँ, लड़कियाँ तो चक्कल होती ही हैं, तितलियों की तरह इठलाती हैं। यह हम अपने व स्वप्निल के लिए कह रहे हैं, फ़िल्हाल। हम दोनों वहाँ पर्यटकों की हरकतों को व कुछ निराली चीज़ों को देख कर खूब हँसे। इस बीच ये दोनों भद्र पुरुष ताल के किनारे बैच पर आराम से बैठे रहे।

बार-बार मन में आता रहा कि काश! कुछ देर समय ठहर जाए और हम प्रकृति का और लुप्त उठा सकें, मगर समय तो बड़ा ज़ालिम होता है, किसी की नहीं सुनता, वक्त का पाबन्द ठहरा, मुड़ कर तक नहीं देखता। इसे तो केवल चलना आता है, सब को पुराना करना आता है। खुद हर पल नया वेश धरता चलता है। काश! यह समय नहीं होता तो कुछ भी नहीं बुढ़ाता, सब कुछ चिर युवा रहता, न नया होता, न ही कुछ पुराना।

## हनुमान गढ़ी

घड़ी की सूइयाँ ऐसे समय में तेज़ गति से चलती प्रतीत होती हैं। अतः समय की नज़ाकत देखते हुए हम नीचे उतरे एवं नौला धारा स्थित हनुमानगढ़ी की ओर प्रस्थान किया। कुछ ही देर में हम पवन-पुत्र हनुमान जी की 40 फीट ऊँची प्रतिमा के सामने उतरे। इतनी विशाल प्रतिमा देख कर ठगे-से रह गए। गाड़ी से उतर कर चारों ओर के दृश्य पर नज़र घुमाई, हर तरफ़ सुषमा ही सुषमा। पंकज जी बोले, देखिए आप को जो स्थल मैं दिखा रहा हूँ, कैसे लग रहे हैं? कोई भी ट्यूरिस्ट गाइड इन स्थानों को अमूमन नहीं दिखाते। जहाँ तक मैं समझता हूँ आप को अच्छा लग रहा होगा। ज़ियादातर ट्यूरिस्ट गाइड श्री संकटमोचन हनुमान जी को ही हनुमान गढ़ी के नाम से दिखा देते हैं। हम ने कहा- हाँ भई! बहुत ही अच्छा लग रहा है, हम सब खुश हैं। इस से भी ज़ियादा खुशी इस बात की है कि आप बड़ी आत्मीयता से हमें घुमा रहे हैं। तभी पंकज जी बोले- चलिए आप खुश हैं, यही मेरे लिए बहुत बड़ी बात है। अब आप पहले नीचे वैष्णो देवी के मन्दिर में दर्शन कर आइए, ये सामने गुफा में से हो कर रास्ता जाता है। हम लोगों ने गुफा में प्रवेश किया। बहुत खूब...वाकई, सुन्दर तरीके से बनाई हुई है, बिल्कुल पहाड़ी गुफा-सा नैसर्गिक टच दिया गया है। ताकि पर्यटकों को बिल्कुल वैष्णो देवी के मंदिर के जैसा ही अहसास हो सके। गुफा काफी लम्बी निकली। इस के पश्चात माता जी का मन्दिर। पूरी श्रद्धा से दर्शन किए। वहीं पास ही राधा-कृष्ण का मन्दिर भी था, उन के दर्शन भी किए। यहाँ श्री कृष्ण की प्रतिमा को साँवले रंग में दर्शाया गया है, जो स्वाभाविक-सा लगा, कुछ हट कर भी, बस अच्छा लगा, शायद साँवले रंग के कारण ही। राम-सीता जी का भी मन्दिर था, लेकिन वो ताले में बन्द कर दिए थे, यानी पट बन्द थे। बेचारे भगवान को पुजारियों के इशारों पर नाचना पड़ता है। उन की इच्छा पर ही नहाना-धोना, खाना-पहनना-ओढ़ना। भगवान के इशारे पर आदमी नाचता है या नहीं यह तो भगवान ही जाने, लेकिन आदमी ज़रूर भगवान को अपनी मर्ज़ी से नचा लेता है।

वहीं मन्दिर परिसर में कुछ फूल झूलें में झूल रहे थे। यानी झूलों में गमले रखे हुए थे, जिन में ऐसे फूल खिले थे कि अस्ती व नवृत्ती में अन्तर करना मुश्किल लगा। जैसे हम पेण्टिंग करते हैं, वैसे लग रहे थे, मानो किसी ने अभी-अभी इन में ब्रश से रंग भरा हो। होता है भई, ऐसा भी होता है। कभी-कभी बनावटी चीज़ भी इतनी कमाल की बन पड़ती है कि अस्ल को मात दे देती है। यही तो हाथों का हुनर है। वहाँ से कुछ कदम पर ही बड़ा प्यारा झरना बह रहा था, बड़ा सुकून मिला। इस इठलाते हुए पानी को देख कर। कुछ देर यहाँ बैठ कर इस की शरारतों को देखना किसी परम आनन्द से कम नहीं था। इस के बाद 'यकीन' साहब नहीं माने और वैष्णो देवी माँ के मन्दिर के

बाहर द्वार का एक फोटो लिया ही सही। अब हम ऊपर आ कर हनुमान जी की विशाल प्रतिमा को निहारने लगे। इतनी विशाल प्रतिमा शायद पहली बार देखी होगी। सम्भव है मनाली में जो गौतम बुद्ध की प्रतिमा देखी थी वो भी लगभग इतनी ही हो, कह नहीं सकते। जगन्नाथपुरी का एक परिवार भी हमारे साथ ही दर्शन कर के कृतार्थ हो रहा था। अनायास ही उन से हमारा वार्तालाप होने लगा। बात तो बजरंग बली की ही चल रही थी। इसी बात पर उन में से महिला बोली कि कलयुग में विभीषण जी एवं हनुमान जी दोनों ही निराकार रूप में पृथ्वी पर हैं। हाँ, अश्वत्थामा के लिए भी ऐसा ही कहा जाता है। बातों ही बातों में पुरी की बात चली, वहाँ के मन्दिर की बात चली। बात हनुमान जी की विशाल मूर्ति बनाने के सन्दर्भ में प्रारम्भ हुई। इसी बात पर वे पुरी के कृष्ण-बलराम एवं सुभद्रा की प्रतिमाओं के निर्माण एवं हनुमान जी से उन के सम्बन्ध पर रोचक जानकारी देने लगीं।

हमें तो आप जान ही गए होंगे कि हमारा जिज्ञासु मन नई-नई जानकारीयाँ प्राप्त करने को हमेशा आतुर रहता है। सो हम बड़े ध्यान से सुनने लगे, आप भी सुनिए...तो बात का यूँ शुभारम्भ होता है कि पुरी में बारह वर्षों में कृष्ण-बलराम एवं सुभद्रा की मूर्तियाँ बदली जाती हैं। उन्हें बनाने के लिए काष्ठ हनुमान जी ही भेजते हैं। यह काष्ठ बहते-बहते स्वतः ही किनारे पर आ लगता है। उन मूर्तियों के निर्माता कलाकार मूर्तियों को भूमिगत ही रखते हैं। जब तक मूर्तियाँ तैयार नहीं हो जातीं तब तक उन्हें कोई नहीं देख सकता। यह काम पूर्णरूपेण गोपनीय चलता है और हर पूर्णिमा को जब तक पुरी के मन्दिर-शिखर पर पण्डा दीपक नहीं जलाता, विभीषण जी भोजन नहीं करते, क्यों कि इस दिन वे दीपक देख कर ही भोजन करते हैं। अपनी बात को पूरी करते हुए आग्रह के साथ बोलीं कि कभी पुरी ज़रूर आइएगा, बड़ा अच्छा महसूस करेंगी आप। हम ने बड़ी आत्मीयता से उन्हें आश्वासन भी दे डाला और वे विदा हो कर अपनों के साथ हो लीं। हमें ये गूढ़...रहस्यात्मक बातें जान कर बड़ा ही अच्छा लगा। कहते हैं कि भ्रमण ज्ञान का भण्डार होता है, वाकई, दो सौ प्रतिशत सच है। घर में बैठे-बैठे तो हम ये सब बातें नहीं जान सकते। इस के लिए तो बाहर निकलना ही पड़ेगा। वही सब से बड़ा ज्ञानी हुआ है, जिस ने बहुत भ्रमण किया है, यानी दुनिया देखी है। कबीर दास जी इस के साक्षात् उदाहरण हैं। वर्तमान में राहुल सांकृत्यायन को ही लीजिए, बड़े घुमक्कड़ थे। उतने ही ज्ञानी भी। घर बैठे हम केवल पुस्तकों से ज्ञान प्राप्त करते हैं, मगर अनुभव कहाँ से लाएंगे। पहाड़ ऐसे होते हैं, पहाड़ वैसे होते हैं, पढ़ा और कल्पना कर ली, मगर पूर्ण सुखानुभूति तो पहाड़ों से साक्षात्कार कर के ही मिल सकती है। अनुभव ही तो है ज्ञान का खज़ाना, और फिर सारी बातें पुस्तकों में हों एवं सारी पुस्तकें हमें उपलब्ध हों, साथ ही हम इन सब को पढ़ पाएँ, कदापि सम्भव नहीं। माना कि घर, घर ही होता है, मगर बाहर भी बाहर ही होता है। वो असंख्य नई चीज़ें, नए दृश्य, नए लोग बाहर ही मिलेंगे, घर में नहीं। दुनिया तो सारी बाहर ही है, घर में तो केवल हम होते हैं। अब तो हमारा भी मन बहुत मचलता है, भ्रमण के लिए।

अभी-अभी अनौपचारिक पत्रिका के फरवरी 2004 अंक में कैलाश यात्रा के संस्मरण एवं चित्र देखे तो देखते ही रह गए। इतना मन हुआ जाने का कि मत पूछिए और विवशता देख कर उदास बैठ गए, फिर खुद को समझा कर यह यात्रावृत्त लिखने लगे। सच बतलाएँ, वहाँ के दृश्य देख कर, पढ़ कर मन ही नहीं, नेत्र भी भर आए। यह मन की बात अभी तक केवल आप को ही बताई है। एक बात और सुन लीजिए, आप से नहीं कहेंगे तो किस से कहेंगे? हमारे तो प्रिय पाठक व

श्रोता आप ही हैं हुआ यँ कि अभी यानी 2003 के 'हिन्दी-दिवस' 14 सितम्बर को हिन्दी साहित्य सम्मेलन प्रयाग द्वारा पुरी में प्रोग्राम हुआ था, दो दिवसीया आमन्त्रण भी आया, हमेशा आता ही है, लेकिन उन्होंने भी बड़ी अजीब शर्त रखी इस बार। शर्त कि गत जून में आयोजित कार्यक्रम में जो चित्रकूट में सम्पन्न हुआ था, जो सहभागी आए थे, उन्हें दोनों ओर का रेल-किराया दिया जाएगा एवं जो नहीं आ सके, उसे कोई भाड़ा देय नहीं, भोजन-आवास की सुविधा के लिए भी बहुत बाद में घोषणा की गई। अतः हम चाह कर भी चित्रकूट नहीं जा पाए थे। यँ तो हर चाहत पूरी होती ही कब है। कवि हेमन्त गुप्ता का विवाह उसी दिन था। उस में जाना ज़रूरी कहें या व्यवहार वश, जो भी हो आत्मीयता के कारण हम शादी में शरीक हुए, चित्रकूट नहीं जा पाए। सोचा, शादी तो एक ही बार होगी, चित्रकूट तो कभी भी जाया जा सकता है। फैसला सही था या ग़लत? बस, पुरी जाने का सुअवसर हाथ से निकल गया। सौभाग्य से ही मिलते हैं, ऐसे अवसर भी। हम दोनों तरफ़ का किराया दे कर भी ज़रूर जाते, क्यों कि मन की खुशी बड़ी होती है, पैसा तो हाथ का मैल है। कभी-कभी पैसे होते हुए भी कहीं नहीं जा पाते और कभी अवसर मिल जाए तो सारे इन्तज़ामात हो जाते हैं। वैसे भी हम पैसे को बहुत कम अहमीयत देते हैं, दूसरी ज़रूरी बातों के सामने। मगर एक तो साथ जाने वाला साथी नहीं मिला, दूसरा इतिफ़ाक़ ये कि उसी दिन उदयपुर की 'कथारंग' संस्था द्वारा हमारी कहानी 'पगली' को पुरस्कृत किया जाना था। ज़ाहिर है हमें पुरस्कार लेने ही जाना था। हम स्वप्निल के साथ वहाँ गए। भव्य-समारोह में 'नवनीत' पत्रिका के सम्पादक द्वारा हमें यह पुरस्कार दिया गया। यह हमारे लिए बड़ा गौरव का अवसर व दिन था। बस, अप्सोस यही रहा कि हम पुरी नहीं जा सके। अब इस सत्त्वाई को भी कैसे झुठलाएँ कि कुछ पाने के लिए कुछ खोना पड़ता है। वक़्त-वक़्त की बातें एवं अवसर की बातें होती हैं। होता है...ऐसा भी होता है। अभी नहीं तो क्या, फिर कभी अवसर मिलेगा। लो, आप को पूरी रामकहानी ही सुना डाली, मुआफ़ करना प्लीज़!

हम सब ने रोड पर खड़े हो कर हनुमान जी की भव्यता के दर्शन किए। अलग-अलग कोणों से उन की खूबसूरती निहारी। मन्दिर एकदम सड़क किनारे होने के कारण अवलोकनार्थ कुछ दूर सड़क पर आना पड़ा। गर्दन भी काफ़ी ऊँची उठानी पड़ी। बजरंग बली को प्रणाम कर के, ढोक दे कर हम लोग काठगोदाम के लिए खाना होते, इस से पहले के.पी. जी के अनुरोध पर 'यकीन' साहब ने हनुमान जी का एक स्नेप ले डाला। वैसे अभी सूर्यास्त में काफ़ी वक़्त था, एक-दो स्थल और देखे जा सकते थे, मगर गाड़ी तो ड्राइवर साहब के हाथों में थी। मुक्तेश्वर नहीं जा सकने के कारण वक़्त बचना ही था।

## काठगोदाम

यहाँ से हम काठगोदाम के लिए खाना हुए। रास्ते में भीमताल रुके। वही भव्य पहाड़ी की आगोश में खिलखिलाती झील बहुत विलक्षण दृश्यावली। यहाँ कोम्की फल मिल रहा था। हम ने लेना चाहा, मगर पंकज जी बोले नैनीताल में तो इसे कोई नहीं खाता, सो हम ने भी लेना रह कर दिया। किसी के कह देने से मन पर बहुत फ़र्क़ पड़ता है। इसी लिए कहा जाता है कि हर लफ़्ज़

सोच-विचार कर बोलो, एक शब्द ज़िंदगी को आबाद कर देता है तो एक शब्द जीवन को बरबादी की राह पर ले जाता है। यहाँ कुछ देर ठहरे, पहाड़ी सौन्दर्य का जी भर रसपान किया। भोजन की पूछताछ की, मगर कुछ पसन्द का नहीं था, अतः काठगोदाम जा कर ही खाने का सामूहिक रूप से निर्णय लिया। तभी कुछ देर के लिए ड्राइवर साहब गायब हो गए, वापस आए तो मूँगफली का पैकेट एवं टॉफियाँ हमारे हाथ में थमा दीं। बोले दोनों को साथ खाना अच्छा लगेगा। इसी बात पर अचानक कवि रामनारायण 'हलधर' का दोहा याद आ गया, आप भी सुनें-

*“अहसानों का सिलसिला, इतना ना बढ़ जाए  
तेरी नीयत पर उसे, शक होने लग जाए”*

वैसे यहाँ अहसान नहीं, उन की आत्मीयता का स्वाद था, मूँगफली में। हम लोग दिन भर से बिना भोजन किए थे, यह भी वजह हो सकती है, लेकिन स्वाद में प्रेम घुला हुआ था। मूँगफलियाँ खाते हुए काठगोदाम के लिए खाना हुआ। राजस्थान में हम लोग मूँगफलियों को गुड़ के साथ खाते हैं, यहाँ ये लोग टॉफी के साथ, यानी कुछ मीठा ज़रूरी है, वाकई टॉफी के साथ बड़ी स्वादिष्ट लग रही थीं, पंकज जी का यह आइडिया आगे की यात्राओं में बहुत काम आ रहा है। क्यों कि गुड़ सुलभ नहीं होता हर जगह, टॉफी आसानी से मिल जाती है।

काठगोदाम यहाँ से मात्र 20 किलोमीटर था। वही पहाड़ी रास्ते, वही मनमोहक हरियाली। नैनीताल ज्यों-ज्यों पीछे छूटता जा रहा था, त्यों-त्यों हमें दुःख हो रहा था, मुड़-मुड़ कर पीछे देखते जा रहे थे। सुन्दरता से जी भी भरे तो कैसे। खर्चे एवं समय की सीमा से अधिक ठहर भी नहीं सकते, लौटना तो नियति है। लेकिन मन में एक विश्वास होता है कि फिर सुअवसर मिलेगा और कुदरत के वैभव से पुनः रू-ब-रू होंगे। बीच में एक-दो जगह हम ने गाड़ी रुकवाई और रास्ते के किनारे खड़े हो कर घाटियों-वादियों का दीदार करने लगे। इतना खुशनुमा मौसम और क्या चाहिए? वहाँ से तलहटी में बहती एक जलधारा दिखाते हुए, पंकज जी ने कहा कि यह ग्वाला नदी है। नैनीताल के अञ्चल में कंक्रीट एवं रेत यहीं से सप्लाई होती है। कुछ देर खुले में टहले, सूर्यास्त होने को था। दूर पहाड़ियों की ओट में उतरने को उदत सूरज मन को बहुत लुभा रहा था। किसी सनसेट प्वाइंट से कम खुशनुमा नहीं था, यह दृश्या के.पी. जी बोले- लो देख लो एक बार और सनसेट यहीं से। मूँगफलियाँ सब गटक ही रहे थे। क्यों कि पंकज जी ने हिदायत दी थी कि काठगोदाम तक इन्हें हर हाल में खत्म करना ही है। किसी के रूनेहिल आदेश को नकारने का दुस्साहस भला कोई कर सकता है? हम पंकज जी को मूँगफली ऐसे खिला रहे थे, मानो हम ने ही खरीदी हों। सब प्रेम की बातें हैं, साहब। यही जीवन का सच्चा सुख है। मिल जाए तो अहो भाग्या कहने को ढाई आखर हैं, मगर- मेरा ही एक शेर नज़ है-

*“कहने को तो प्रेम के हैं बस ढाई आखर  
पढ़ने में तो इन को जीवन भर लगता है।”*

अरे...बातों-बातों में काठगोदाम ही आ गया। जाते समय यानी चढ़ते समय लम्बी प्रतीक्षा के बाद नैनीताल आया था। यह भी हम ने अनुभव किया है कि कहीं भी जाते समय वक्त अधिक

लगता है, मगर लौटने में तुरन्त ही मंजिल आ जाती है। काठगोदाम के बाज़ार में कई रेस्त्राँ हमें ड्राइवर साहब ने दिखाए, मगर सभी वेज़-नॉनवेज़ मिक्स थे। आखिर उन्होंने एक ऑटोरिक्शे वाले से पूछा तो उस ने टूरिस्ट डिपार्टमेंट का पता दिया और सीधे हमें वहीं ले गए। वहाँ पहुँच कर हम ने देखा कि सफ़ाई भी ख़ूब थी, घर के जैसी रसोई, कीमत भी वाजिब। सामान उतार कर पंकज जी ने विदा माँगी। दो-तीन दिन इन के साथ रहने से आत्मीयता-सी हो गई थी, आदमी भी अच्छे लगे, भले इन्सान निकले। उम्र यही कोई 35-40 वर्ष की। इन से जुदा होने का जितना दुख हम सब को हो रहा था, उतना ही उन्हें भी था। पंकज जी के चहरे पर भी उदासी झलकने लगी थी। किराए के लिए भी बोले कि जो आप की मर्ज़ी हो दे दो। बहुत इसरार करने पर भी मुँह से कुछ नहीं बोले। शायद प्रेमवश ही ऐसा हो रहा था। आखिर ‘यकीन’ साहब ने 750 रुपए उन के हाथ में थमा दिए। बहुत आत्मभाव झलक रहा था, उन की आँखों में विदा के समय। ‘बाय’ कह कर वो नैनीताल की ओर हो लिए। हम लोग भीतर रिसेप्शन में कुछ देर सुस्ताए। फिर खाने का ऑर्डर कर के आराम फ़र्माया। मात्र 15 मिनट में भोजन तैयार था। क्यों कि खाना हमारे ही लिए बना था। उस समय वहाँ अन्य कोई सैलानी था ही नहीं। दाल-रोटी, सब्ज़ी एकदम घर जैसी। बहुत दिनों बाद इतना अच्छा खाना मिला था। दिन भर की प्रतीक्षा फलित हो गई। क्षुधा शान्त होने से काफ़ी सन्तुष्टि मिली। ईश्वर को धन्यवाद दिया।

## आ अब लौट चलें

अभी ट्रेन के आने में काफ़ी समय था, सो वहीं टूरिस्ट ऑफ़िस में कुछ जानकारी लेने लगे। उत्तरांचल भ्रमण की बुकलेट भी ली। कमरों का किराया पूछा तो 400 रुपए में डबल बेड वाला कमरा था। कमरा एकदम स्वच्छ, बड़ा व अच्छा। हम दंग रह गए। हाँ, मौसम के अनुसार कुछ कम ज़ियादा ज़रूर हो जाता है, मगर अधिक फ़र्क नहीं पड़ता। मलाल हो रहा था, इस डिपार्टमेंट के होटेल में नहीं ठहरने का, अतः आगे याद रखने का मन में संकल्प लिया। ये बात अलग है कि हम अगली यात्रा तक सब भूल जाते हैं। अरे... यहाँ सीढियों पर उत्तरांचल के पर्यटन स्थलों की दूरी व नाम लिखे हुए हैं, ताकि सैलानियों को बिना पूछे ही जानकारी मिल जाए। बड़ा अच्छा लगा हमें यह आइडिया, ख़ैर यह टूरिस्ट होटेल है, यह होना ही चाहिए।

तभी अचानक मैनेजर साहब आ कर हम से बोले कि आप को अधिक देर ठहरना होगा तो कृपया रूम ले लें। अब और पर्यटक भी आएंगे। उन का मतलब हम सब समझ गए और हम ने कहा कि बस गाड़ी का समय हो गया, हम लोग निकलने ही वाले हैं। हम लोग बोरिया-बिस्तर उठा कर जंक्शन की ओर हो लिए। स्टेशन काफ़ी मेण्टेन किया हुआ था, जिस का पुरस्कार भी इसे मिल चुका है, वही पुरस्कार-पत्र वहाँ टँका हुआ था। अरे हाँ, जंक्शन आते वक़्त रास्ते में अपने बेटे नवनीत से कोटा बात भी की और बातों ही बातों में पानी की बोतल वहीं भूल गए। शरीफ़ मालिक दौड़ा-दौड़ा आ कर दे गया, वरना सफ़र में काफ़ी दिक्कत आ सकती थी।

स्टेशन पर गाड़ी ठीक समय पर लग चुकी थी। हमारा रिज़र्वेशन दो अलग-अलग डिब्बों में

निकला, सो एक कोच के यात्री जो आधी सीट के मालिक थे उन से निवेदन कर के एडजस्ट किया। स्वप्निल व हम दोनों तो सो गए, दोनों पुरुष लोग एक सिंगल सीट पर टिके रहे सारी रात। थकान के मारे हम दोनों को कब नींद आ गई पता ही नहीं चला। सुबह पाँच बजे दिल्ली पहुँच चुके थे। अब डेढ़ बजे वाली ट्रेन की प्रतीक्षा करनी थी। उस का आरक्षण जो था। सो वेटिंग रूम में आराम से फ्रेश-व्रेश हो लिए, चाय-वाय पी, फिर सामान क्लॉक रूम में जमा करवाया, ताला भी खरीदना पड़ा बैग में लगाने हेतु। फिर रिवशे से चाँदनी चौक की ओर निकल गए। थोड़ी दूर चलने पर रिवशा भी छोड़ना पड़ा, क्योंकि दीपावली की वजह से भारी भीड़ थी, वन वे ट्रेफ़िक चल रहा था। पैदल-पैदल चाँदनी चौक में घूमते हुए नैनीताल वाला जापानी फल भी देखा, नाम पूछने पर बताया गया कि कुछ भी कह दो इसे।

नवनीत के लिये एक टी-शर्ट खरीदी, अपने लिए एक बैग जो रोज़ाना स्कूल ले जाते-ले जाते अब फट चुका है। वो बैग वाला भी, 'सिलाई तो नहीं खुलेगी', यह पूछने पर बड़ा बिफरा था, फिर हम ने भी सोचा कि 65 रुपए में क्या आता है? एक पटियाला सूट खरीदा। कुछ और खरीददारी कर के रेस्त्राँ पर खाना खाया। खाना सस्ता व अच्छा था। दिल्ली में वैसे भी खाने की कोई समस्या नहीं है। ये तो देश का सेण्टर है। हर तरह की सुविधा यहाँ उपलब्ध होती ही है। हम ने बादाम का दूध पिया, स्वप्निल ने छोले-पूड़ी ली। इधर वक़्त होने को था, भाग कर स्टेशन आए, क्लॉक रूम से सामान निकाले, स्टेशन पर ज्ञात हुआ कि ट्रेन 4 घण्टे लेट है। अब सामान भी निकाल चुके थे, समझ में नहीं आ रहा था क्या करें? इधर-उधर होते रहे, मैग्ज़ीन पढ़ते रहे, फिर स्वप्निल व हम वापस चाँदनी-चौक की ओर चल निकले। सीडी खरीदने हेतु लाला लाज पतराय मार्केट जाना था, मगर लाल क़िले से ही वापस मुड़ गए, भीड़ इतनी थी कि हिम्मत नहीं कर सके आगे जाने की। आदमी से ज़ियादा तो रिवशे थे यहाँ। थकान भी बहुत हो चुकी थी, अतः रूमाल व मौँजे ही खरीदे। वापसी में देखा सड़क के किनारे भी खाना मिल रहा था। हर वर्ग के लिए यहाँ खाना उपलब्ध है। अच्छी बात है किसी को भूखा नहीं रहना पड़े। स्टेशन पर आ कर पता चला कि गाड़ी 8:30 तक आने की संभावना है। कहीं किसान आन्दोलन के तहत गाड़ियाँ रोक ली गई हैं, कुछ का मार्ग परिवर्तन किया गया है। आन्दोलन किस का, सज़ा कौन भुगतें? अब क्या था, सो एग्ज़ॉय करने में ही अपनी भलाई समझी, क्योंकि जहाँ वश नहीं चले वहाँ दुखी होने से फ़ायदा भी क्या? एग्ज़ॉय करो, मस्त रहो। हम लोग यात्री लोगों की विभिन्न हरकतें देखते उन के मनोभावों को पढ़ने की कोशिश करते, बातें बनाते व हँसते, लेकिन यह भी अनुभव में बढ़ोतरी ही हो रही थी। काफ़ी विलम्ब के बाद गाड़ी का इन्तज़ार ख़त्म हुआ और हम लोग कोटा पहुँचने के खयालों में डूब गए। कवि-कथाकार आनन्द संगीत का यह शेर याद आया, आप की भी नज़्र है-

“यूँ तो दुनिया भी कम हसीन न थी  
चैन तो घर ही लौट कर आया।”

और चलते-चलते एक शेर कृष्णा कुमारी का भी हो जाए-

“लोग घणों ई घूमबा-फरबा जावें छै  
फैरें महाँ तो म्हारो घर ही भावें छै।”



-इति शुभम्...।

